॥ हेतुः ॥

योमुम्बापुरी माङ्गरोलसदसि श्रीमज्जिनाधीशितु-
श्चैत्यद्रव्यमुपेत्यवक् हतमतिः सङ्घादिकर्म्मस्विति ।
श्रीमज्जैनततेस्तमस्तरणकं यश्चाऽलिखत् पापभाक्
शिक्षां बेचरदासकं गिरधिपो ग्रन्थे चकाराऽत्र तम् ॥ १ ॥

मिथ्यात्वान्धतमोभरेण निभृता ये जैनतन्त्र्यादयः
पत्रे स्वे हतबुद्धयो विदधिरे मुद्रापणं चैतयोः ।
तत्तेषामपि शिक्षणं प्रविहितं स्पष्टं महाबुद्धिना
भव्यस्तुत्यपदेन लब्धिविजयेनाऽत्रागमोल्लेखतः ॥ २ ॥

प्रिय सज्जनो ! इस पुस्तकको प्रसिद्ध करनेमें हेतु यह हैकि एक बेचरदास नामक व्यक्तिने ता. २१ जनवरी १९१९ के रोज मुंबईमें देवद्रव्यादि अनेक विषयोंपर भाषण दिया था । जिसको ता. २० वी अप्रेल १९१९ के रोज जैनपेपरमें जैनतन्त्रिनें छपवाकर प्रसिद्ध कियाथा. वह भाषण जब जैनपत्रद्वारा विशेष प्रसिद्धिमें आया, तब जैनसमाजको मालूम हुवाकि बेचरदासने तीर्थङ्करप्रभु. सामान्यकेवलि भगवान् तथा चतुर्दशपूर्वधर आचार्य महाराजादिज्ञानि पुरुषोंकीसम्मतिसे विरुद्ध

१. व्याख्यानवाचस्पतिः । २. देव द्रव्यविषयक भाषण तमस्तरणलेखयोः ।

और अज्ञानतासे भरा हुवा यह भाषण देकर जैनसमाजको बड़ा भारी धोखा दियाहै, ऐसा समझकर हमने बेचरदाससे हेंडबिलद्वारा सात प्रश्नोंका जवाब मांगा । जिनका जवाब बेचरदासकी तरफसे बिलकूल नहीं मिला बल्कि मैं जवाब देनेमें अशक्तहूं. ऐसा जाहिर नहीं करते हुए उसने एक बड़ा भारी नीचरूपकवाला **तमस्तरण** नामका लेख ता. २५ वी मे सन १९१९ के जैनपत्रमें छपवाकर प्रसिद्ध करवाया । प्रथमतो जैनागमविरुद्ध भाषण दिया, और बादमें **तमस्तरण** नामक लेख लिखा, जोकि ' एक करेला और दूसरे नीम्ब चढा ' जैसे स्वहृदयगत अनास्थारूपकटुकताका प्रकाश कियाहै । इस **तमस्तरण** नामके लेखमें चतुर्दशपूर्वधर **श्रीस्थूलभद्रजी** महाराज, जिनकल्पकी तुलना करनेवाले श्रीआर्यमहागिरि महाराज, **सम्प्रतिनृपप्रबोधक—श्री आर्यसुहस्तिमहाराज,** दशपूर्वधर **श्री वज्रस्वामि** महाराज, साढानौपूर्वधर और चार अनुयोगोंके पृथक्कर्त्ता श्रीआर्यरक्षित महाराज, **पन्नवणासूत्रकार श्रीश्यामाचार्य** महाराज, पांचसो ग्रन्थके प्रणेता **श्री उमास्वाति** महाराज, **विक्रमनृप** प्रबोधयिता **श्रीसिद्धसेनदिवाकर** महाराज, श्री आगमग्रन्थोंको पुस्तकारूढ करनेवाले **श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण** महाराज, आदि पवित्र—पूर्वधरोंको, और चौदहसो चुम्मालीस ग्रन्थके रचयिता **श्रीहरिभद्रसूरि** महाराज, नवाङ्गी टीकाकार **श्री अभयदेवसूरि** महाराज, **कुमारपालभूपालप्रतिबोधयिता कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य** महाराज, आदितपागच्छ विरुदधारक परमपुनी-

तात्मा श्रीजगच्चन्द्रसूरिमहाराज, तथा कर्मग्रन्थभाष्यत्रयादि अनेकग्रन्थप्रणेता श्रीदेवेन्द्रसूरिमहाराज, कुर्चालसरस्वतीबिरुदधारक सहस्रावधानि· सन्तिकरस्तोत्ररचकरसकलसङ्घमें मारीके निवारक श्रीमुनिसुन्दरसूरिमहाराज, अकब्बरनृपप्रबोधक **श्रीहीरविजयसूरि** महाराज, तथा शतग्रन्थप्रणेता धर्मधुरन्धर **न्यायविशारद** वाचकवर श्रीयशोविजयजी महाराज आदि जो जो बडे प्रभावशाली पुरुष हुए है उन सबको (व्यक्तिविषयक स्पष्टता नहीं करनेसे) अज्ञानक्रिया (धूमस– अन्धेरा तेरने रूप) करनेमें एक सरदारका रूपक दिया है. और चतुर्विध सङ्घको—जिनमें **महावीर** प्रभुके दोसौ वर्षक पीछेसें हुए सभी उत्तमोत्तम साधु साध्वीएं तथा- **सम्प्रतिमहाराज, श्रीविक्रमराजा, श्रीकुमारपालमहाजा, श्री विमलशाह, श्रीवस्तुपालतेजपाल, जगडुशा, जावडशा, भावडशा, पेथडकुमार कर्माशा.** आदि चुस्तजैनश्रद्धावाले अनेक तीर्थोंके उद्धारक श्रावक श्राविकाएं भी आ जाते हैं (जिन्हें) धूमस तेरने वाला एक सार्थ–समूह (काफला) की उपमा दी है। और स्वयं वैद्य बना है। अफसोस! सद अफसोस! दुनियामें ऐसे रोगपीडित त्रिदोषयुक्त अनेक प्राणि मिल आते हैं जो असङ्ख्यही नही बल्कि अनन्तगुणधारण करने वाले महात्माओंकोभी बुराभला कहनेसे नही हटते, और स्वयं नसनसमें कीटकुलआवृत हैं तथापि सन्निपातके जोरसे बडेवडे वैद्योंकीभी नाडिऐं अपने हाथमे ले कर वैद्य बन बैठते हैं। बेचरदासका भी मिथ्यात्वरूप सन्निपातके जोरसे ऐसाही हाल हो

गया है, अन्यथा स्वयं पामर तथा असङ्ख्य कुकर्मरूप कीडोंसे नसनस में भराहुवा होनेपरभी अनन्तगुणधारक जगज्जीवोंके भावरोगोंको दूर करनेमें धन्वन्तरीसमान केवलिकल्प श्रुतधरोंके, तथा भवभवके तारने वाले तीर्थस्वरूप चतुर्विधसङ्घके वास्ते एक अघटितरूपक लगा कर स्वयं वैद्य बननेकी चेष्टा कदापि नहीं करता। सन्निपातके जोरमें आयेहुवे आदमीको यद्यपि उसके माता पिताभी उसे मंचेसे बान्ध लेतेहैं और वक्तपर उसकी छातीपरभी चढ बैठते हैं और वख्तपर सख्त वचनोको सुनाकर उसे कुचेष्टा करनेसे हटाते है, तथापि वे उसके शत्रु नहीं है, इसी तरह हमनेभी वेचरदासके मिथ्यात्वरूप सन्निपातके जोरको दबानेके लिये लेखिनीद्वारा खूब जोर अजमाया है तथापि हमारा इससे द्वेषभाव नहीं है. परन्तु ऐसी कठिनशिक्षा पाकर वह तथा अन्यपुरुषगण जान कर फिर इस रोगके भोग न बनें, और हमेशह याद रख्खे कि खूब कटुक क्वाथ पिलानेवाले परमोपकारी अनेक महात्मा इस दुनियापर मौजूद हैं। पाठकगण ! वेचरदासने तमस्तरण नामके लेखमें क्या लिखा है ? इस विषयको जाननेकी तुमारी इच्छा हमारी बनाई हुई पुस्तकको देखकर हो जावे और तुमको उस वख्त वह लेख (तमस्तरणका लेख) न मिले तब तुम्हारा दिल उस लेखकी धुनमें फँस न जाय; इस लिये वह लेख इसपुस्तकके अन्त्यभागमें सबसे पीछे निकला हुआ होनेसे पीछे दाखिल किया गया है, उस लेखके निकलनेके पेश्तर हमने वेचरदाससे सात प्रश्न किये थे इस लिये उस तमस्तरण नामक लेख-

के प्रथम हमारे सात प्रश्न वाला हेंडबिल दाखिल किया गया है. हमारे प्रश्न निकलनेसे पेश्तर उसने (बेचरदासने) जैनागमविरुद्ध देवद्रव्यादिविषयोंपर भाषण दिया था इस लिये उस भाषणको प्रश्नोके हेंडबिलसे प्रथम दाखिल किया है. मतलब प्रथम उसने भाषण दिया उसके बाद हमने प्रश्न किये और तदन्तर उसकी तरफसे तमस्तरण नामका लेख जाहिर हुआ है सो इसी क्रमसे लेख दाखिल करनेमें आये हैं, भाषणको दाखिल करनेका यह मतलब है कि हमारी पुस्तकमें जिन पङ्क्तिओंका आगे पीछे खण्डन आ गया है उनका मात्र इसारा ही हमने बतलाया है, इस लिये संपूर्ण भाषणको पढनेकी चाहना वालेकी मनःकामना मुरझा न जाय, इस लिये भाषण; और बेचरदास प्रथमतो भाषण देनेको तैय्यार हो गया और जब प्रश्न पूछनेमें आये तब जवाबभी नहीं देता इस विषयको जाहिर करनेके लिये प्रश्नोंका हेंडबिल दाखिल करनेमें आया है। हमारी तरफसे केवल परोपकारके निमित्त देवद्रव्यादिसिद्धि नामकी पुस्तक प्रसिद्ध की गइथी इसे देखकर जैन तंत्रीने पक्षपातके आवेशमें आकर इस पुस्तकके विषयमें यद्वातद्वालिखकर जनसमूहको धोखा देना चहाथा; इसलिये तंत्रीके लेखके जवाबमें मु. डभोइसे हेंडबिल निकला। इसके जवाबमें मेनेजरने मतलबको छोडकर असत्य आक्षेप युक्त लेख लिखा; इस प्रकार डभोइसे पारस्परिकसमालोचनामें चार हेंडवील जाहेर किये गये बाद अज़ां तंत्रीने इस प्रस्तुत विषयकी चर्चाका त्याग किया तब यहांसेभी यह मामला बंदकियागया।

वे चार हेंडबीलभी पुस्तकके अंतमें दाखिल गये हैं। यद्यपि इन हेंडबिलोंका इस पुस्तकसे घनिष्ट संबन्ध नहीं है; तथापि सर्वथा असंबद्धभी नही हैं; क्योंकि हेंडबीलोंका बीजभूत यही पुस्तक हैं । शास्त्रानभिज्ञ निःसत्ववृत्तिवाले और चाहिये जैसी धर्मश्रद्धा वगैरके कितनेक लोग कहते हैं कि '**देवद्रव्यादिसिद्धिकी** भाषा ऐसी है तैसी है ' इत्यादि उन लोकोंके, **द्वादशकुलक, भगवतीसूत्र, उपदेशसप्तति, ज्ञातासूत्रके** सोहलवे अध्ययन, आदिशास्त्र पढ़ने सुननेमें नहीं आये होंगे, या निःसत्ववृत्तिवाले श्रद्धाशून्य होंगे, अन्यथा उनकी यह प्रवृत्ति कदापि नहीं होती । श्रुतधर प्रभावक--पूर्वाचार्योंके निन्दक तथा उत्सूत्रप्ररूपकका अपमान करना जैसे साधुको योग्य है, सन्मानवाचकशद्ब उतनेही उसके लिये अयोग्य है । नीच व्यक्तिपर फिटकार करना सो उसके किये हुवे नीच कार्यकी गर्हणा है । और नीच व्यक्तिका बहुमान रखनासो उसके किये हुवे नीचकार्यकी अनुमोदना है। इस तरह सूक्ष्मेक्षिकासे (बारिक नजरसे) देखेंगे तब उनको हमारे इस कार्यपर हर्ष हुए वगैर नहीं रहेगा । परन्तु श्रद्धा और सत्वरूप औषधिकी आवश्यकता है । इस पुस्तकमें मूल, टीका, निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, रूप पञ्चाङ्गीके अतिमान्य पाठोंसे देवद्रव्यादिपदार्थोंकी सिद्धि की गई है । और जगत्के भलेके लिये बेचरदासके वचन उत्सूत्ररूपहलाहल ज़हरसें भरे हुए होनेसे मान्य करने योग्य नहीं है इत्यादि सूचना कीगईहै. ज़हांपर बेचरदासका ज्यादह गुनाहवाला ब्यान

हुआ है वहांपर उसको ज्यादह फिटकार दी गई है, और जहांपर कम गुनाहवाला ब्यानहै, वहांपर कम । इस तरह सर्वत्र सर्वथा न्यायको दृष्टिपथमें रखकर यह पुस्तक रची गई है. तथापि किसी अज्ञानीको इसमें न्यायप्रकाश न मालूम हो तो उसे अपने कर्मरोगका कारण मानकर शान्त रहना चाहिये !

प्रिय पाठको ! इस पुस्तकका निर्माण वेचरदासको सङ्घ बाहर करनेसे कितनेही महिने पेश्तर होगयाहै, तोभी क्या करें प्रेसवालोंकी वहाँ कार्यअधिकतासे बहुत विलम्ब होनेसे टुकडे टुकडे दोसौ नकलें इस पुस्तककी प्रसिद्धिमें आईहैं, जिनमें हेतु, भाषण, प्रश्न-हेंडबिल और तमस्तरण का लेख तथा जैन तंत्रीकेलिये निकाले हुए शिक्षाप्रद हेंडबील दाखिल करनेमें नहीं आयेहैं. बाकीके जिल्दके आकारवाले संपूर्ण (१२००) पुस्तकोंमें यह दाखिल किये गयेहैं अगर इस पुस्तकके लिखनेमें किसीभी स्थानपर भ्रमवश सूत्रविरुद्ध वर्त्तन हो गया होवेतो (मिच्छामिदुक्कडं) मेरा दुष्कृत मिथ्याहो ।

" सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं, सर्वकल्याणकारणम् ।
प्रधानं सर्वधर्माणां, जैनं जयति शासनम् "

॥ लेखक ॥

इस देवद्रव्यादिसिद्धिनामके पुस्तकमें साक्षि दिये हुए ग्रन्थोंका तथा उनके कर्त्ताओंका लिष्ट—

ग्रन्थनाम	कर्त्तानाम
१ श्रीपालचरित्र प्राकृत.	रत्नशेखरसूरिः
२ संबोधसप्ततिः	"
३ श्राद्धविधिः	"
४ कर्मग्रन्थ	देवेन्द्रसूरिः
५ श्राद्धदिनकृत्य.	"
६ त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरितं.	हेमचन्द्राचार्यः
७ कुमारपालप्रबन्धः	
८ उपदेशसप्ततिः	सोमधर्मगणिः
९ पञ्चाशकप्रकरणम्	हरिभद्रसूरिः
१० पञ्चाशकटीका.	अभयदेवसूरिः
११ संबोधप्रकरण.	हरिभद्रसूरिः
१२ आवश्यक २२००० हजार	"
१३ आवश्यकचूर्णिः	
१४ महावीरचरियं प्राकृत.	नेमिचन्द्रसूरिः
१५ वसुदेवहिण्ड	सङ्घदासगणिः
१६ भत्तपइन्नासूत्र.	
१७ रायपसेणीसूत्र	

१८	श्रीज्ञातासूत्र	
१९	व्यवहारसूत्र	जिनभद्रगणिक्षमाश्रमण
२०	व्यवहारभाष्य	"
२१	श्रीजीवाभिगमसूत्र.	
२२	निशीथसूत्र.	
२३	निशीथचूर्णिः	
२४	सङ्घपट्टकटीका.	जिनपतिसूरिः
२५	वृहत्कल्पसूत्र	
२६	कल्पसूत्र	भद्रबाहुस्वामी
२७	मल्लिनाथचरित्रं	विनयचन्द्रसूरिः
२८	उववाईसूत्र.	
२९	भगवतीसूत्र.	
३०	प्रमाणनयतत्त्वालोकालङ्कार.	वादिदेवसूरिः
३१	सुपासनाहचरियं. प्राकृतं	लक्ष्मणगणि
३२	उपासकदशांगसूत्र.	
३३	सूयगडांगसूत्र.	
३४	प्रश्नव्याकरण.	

श्रीमद्विजयानन्दसूरीश्वरपादपद्मेभ्यो नमो नमः ॥—

॥ देवद्रव्यादिसिद्धि ॥

अपरनाम बेचरहितशिक्षा ॥

नत्वा श्रीमन्महावीरं, कृत्वा सद्गुरुवन्दनम् ।
सिद्ध्यै श्रीदेवद्रव्यादे-र्गुम्फयते पुस्तकं मया ॥ १ ॥
प्राग्भारात् प्राच्यपापानां, वणिजा द्विचरेण[1] हा ।
दारुणाऽसत्यवादेन, जैनवर्गो विमोहितः ॥ २ ॥
तद्व्यामोहविनाशार्थं, भाविनां रक्षणाय च ।
श्रीमद्भिः कमलाचार्यैः, प्रेरितेन प्रयत्यते ॥ ३ ॥
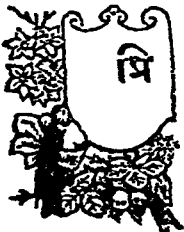
प्रिय सज्जनो ! इस अपार संसारसागरमें अनादिकालसे परिभ्रमण करते हुए जीवोंने कितना कष्ट प्राप्त किया है उसकी गणना भी नही हो सकती। यदि उन दुःखोंको मालूम करने लायक़ कोई अतीन्द्रिय ज्ञान उत्पन्न होतो निश्चय हो

१—बेचरेण.

सकता है कि हा ! हा ! ! एक अज्ञानताके कारण जगद्वासी जीव कितने कठोर दुःखके भागी बन चुके हैं। कितने ही कालतक नरककी असह्य पीड़ा परमाधामीके हाथसे या पारस्परिकविग्रहसे रो रो कर सहन करनी पड़ी। वहांकी भूमिकी उष्णता सहन करनी कुछ सहेल बात नहीं है। यहां जोरसे जलते हुए अग्निके कुंडमें पांव रखना और वहांकी ज़मीन पर पांव रखना समान है यानी क्षेत्रके स्वभावसेही वहांकी-नरककी ज़मीन इस प्रकार उष्ण रहती है। ऐसी ज़मीनमें असंख्य वर्षों तक पड़े रहना क्या कम दुःख है? वहांकी क्षुधाने तो सीमा ही छोड़दी! ढाईद्वीप-के अन्नको एक जीव खालेवे तो भी क्षुधा शमन नहीं होवे !! इसीतरह शीत व्यथाका भी पार नहीं। वहांके नारकको खूब बरफ़ जमे हुए स्थानपर लेजाएं और वहांपर उसको सुलाकर उसको बरफ़से चारों ओर ढकदेवें तब वह मानता है कि मैं कुछ उष्णतामें आया हूँ। अब आप विचार कीजिए कि वहां किस दर्जेहकी शीत व्यथा सिद्ध हुई। मतलब कि नरकमें भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, दुर्गंध, अंधकार, कटाकटी और लडालड़ी ऐसी चलती है कि वहांपर एक क्षणभर भी जीवको सुख नहीं मिलता। तिर्यंचकी योनिमें निगोदअवस्थामें अव्यक्तदुःखका पार नहीं है। एक श्वासमें सतरहसे अधिक जन्म मरण करने पडते है। बादर तथा सूक्ष्म पृथ्वी, अप्, तेऊ, वायु, साधारण प्रत्येक वनस्पतिकी योनियोंमें भी बड़ी भारी वेदना सहन करनी पड़ती है। बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरि-

न्द्रिय जीवोंको अन्तरंतर्मुहूर्तमें क्षुधावेदनी सताती है। और गर्मी सर्दी आदि अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं। पञ्चेन्द्रियतिर्यंच योनिमें कभी गधा बनकर उतना भार ढोना–उठाना पड़ता है कि ऊपरका चमड़ा भी उतर जाता है और चौमासेकी मोसममें वर्षादके कारण उसमें कीड़ आदि पड़नेसे भारी वेदना सहनी पड़ती है। इसीतरह सड़े हुए कुत्ते कितना दुःख पाते हैं, जो किसीसे भी अज्ञात नहीं। उन्हें अपने घरके आंगनमें भी बैठने नहीं देते। मतलब कि अति दुःखदायक नरक और तिर्यंच गतिके अन्दर अनन्तदुःख जीवने सहन किये है और मानव तथा देवयोनिमें भी अनेक कायिक तथा मानसिक व्यथाएं होती है। गर्भावासका भी दुःख बड़ा भयङ्कर है और मरनेकी वेदना भी कम नहीं है। आधि व्याधि तथा दारिद्र्यादिसे पीड़ित प्राणी जहां तहां देखनेमें आते हैं। ग़रज़ कि सम्पूर्ण जगत् दुःखमय है, इस दुःखमय संसारका मुख्य कारण कर्म है और कर्मका बन्ध चार हेतुओंसे होता है जिनमें मिथ्यात्व मुख्य हेतु है। जबतक मिथ्यात्त्वका ज़ोर हो तबतक जप, तप, क्रियाकाण्ड, भस्म पर लिंपन या आकाशमें चित्रामकी तरह सर्व निष्फल हैं। इसलिए प्रथम मिथ्यात्वको त्यागकर सम्यक्त्वको प्राप्त करना चाहिए। देवाधिदेव जिनेश्वरदेवको देवरूप और पञ्चमहाव्रतधारी मुनिको गुरुरूप और वीतरागप्ररूपित दयामय धर्मको ही धर्मरूप माननेसे सम्यक्त्व प्राप्त होता है। कितनेक महापुण्योदयसे सम्यक्त्वको पाकर भी पापोदयसे नास्तिकजनोंके

सहवासमें फंसकर उसे खोदेते हैं और अनन्तकाल तक दुःखमय संसारमें ठोकरें खाया करते हैं। सम्यत्त्वसे भ्रष्ट हो जानेके कारण नास्तिकलोक पढने लिखने बोलने आदिक जितनीं क्रियाएं करते हैं वे सब तमस्तरण जैसी हैं, क्योंकि मिथ्यात्त्वकी करणी अंधकार-मय होनेसे तमस्तरणके रूपकसे जूदी नहीं होसकती। तो भी खूबी यह है कि आप अंधेरा तैरते हुए भी " जलमें तैरते हैं " ऐसा मान बैठते हैं। और जो समत्त्वकी क्रिया वाले दरअसल संसार जलधि तैर रहे हैं, वे तमस्तरण करते मालूम पड़ते हैं। यही उन मिथ्यामतिमोहितोंकी जल्दी दुर्गतिमें जानेकी निशानी है। जैसेकोई कालकी सीमाको पहुंचाहुआ मनुष्य श्वेतवस्त्रको भी लाल देखता है, अथवा कमला—पीलिया रोगग्रसित श्वेतको भी पीत ही कहता है। इसीतरह आज कल कितनेक मिथ्यात्वमोहित मनुष्य जो सूत्रविहित शुद्धमार्ग है उसको तमस्तरण (अंधेरा तेरना) बताते हैं और स्वकपोलकल्पित सूत्रविरुद्ध असत्यमार्ग है उसको जलतरण मानते हुए अपने मुँहसे मियां मिट्ठू बनते हैं। उदाहरणार्थ देखिये कि संवत १९७५ वैशाख वदि ११ रविवारके 'जैन' पत्रमें बेचरदासनामक किसी वज्रकर्मी व्यक्तिने अनन्तसंसारवर्द्धक " तमस्तरण " शीर्षक एक कुलेख लिखकर महावीरप्रभुके निर्वाण बाद दोसो वर्षके पीछेसे लेकर आजतक दशपूर्वधर श्रीवज्रस्वामी, तत्त्वार्थसूत्रके कर्त्ता **श्रीउमास्वाति महाराज**, पन्नवणासूत्रकार **श्रीश्यामाचार्य्य महाराज**, विक्रमनृपप्रबोधक **श्रीसिद्धसेनदिवा-**

कर, पूर्वधर श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमण, देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण, आचार्य्य मल्लवादि, श्रीहरिभद्रसूरीश्वरादि जितने प्रभावक आचार्य्य हुए हैं और महाराजा सम्प्रतिराजा, कुमारपाल महाराज. विमलशाह, वस्तुपाल, तेजःपाल, पेथड़, शत्रुञ्जयआदितीर्थोद्धारक जितने प्रभावक श्रावक हुए हैं उन सबको अंधेरा तैरनेवाले जाहिर करके अपनी अकलकी क़ीमत बतलाई है, मुझे अफ़सोसके साथ बिचारे 'वेचरदासकी' कुवुद्धि पर दया आती है और उसकी कुवुद्धिको धिक्कार देते हुए मुझे कहना पड़ता है कि हाय! इस दुष्ट वुद्धिने वेचारे बेचरदासकी आत्माको अंध नरकावनीमें पहुंचाने का प्रयत्न किया है, और जैनपत्रके एडिटरने भी पूर्वोक्त शासनप्रभावकपवित्र आचार्योंका एवम् श्रावकोंका तमस्तरणसूचक "तमस्तरण" नामक लेखको प्रकट करके उसने पवित्र जैननामको ही कलङ्कित नहीं किया बल्कि मनुष्य अपने उदरपूरणके लिये नीचसेभी नीच कर्म करने पर उद्यत होजाता है यह साबित कर दिखाया है, उसने "जैन" पत्रको जैनाभास और जैनसमाजके लिए सहायक नहीं किन्तु निरर्थक कर दिखाया है और साथ ही अपने आपको अधोगतिमें पहुंचनेका लोंकोको भान कराया है, उसने और भी शासन विरुद्ध कार्य किये हैं परन्तु यहां अप्रासंगिक होनेसे नहीं लिखे जाते, अफ़सोस है कि वेचरदासने शासनप्रभावक आचार्य्योंकी निन्दक अपनी कुवुद्धि को रोकनेका—अपने हृदयसे जूदा करनेका ज़रा भी प्रयत्न नहीं

किया और उस नरकगामिनी बुद्धिके वशीभूत होकर सूत्रमार्ग पर चलनेवाले पूर्वधर आचार्यादिकोंकी निन्दामें 'तमस्तरण' नामक नीचरूपक लगा दीया है कि कोई भी तटस्थ बुद्धिमान् उस लेखको देखकर वेचरदासकी वैरिणी नीच बुद्धिको धिकार दिये विना कभी न रहेगा, हां, वेशक अभव्य या दुर्भव्य जीव उस लेखको देखकर खुश हुए होंगे, वेचरदासने कुबुद्धिसे प्रेरित होकर पूर्वाचार्योंकी निन्दा करते समय तो अवश्य आनन्द माना होगा पर उसका फ़ल भवभ्रमण करते हुए मिलेगा तब वह दुःख होगा कि जिसकी सीमा ही नहीं है। हमको वेचरदासके आगन्तुक दुःख पर बड़ा त्रास आता है पर वेचरदासको स्वयम् आगन्तुकदुःखका भय क्यों नहीं हुआ ? मालूम होता है कि मिथ्यात्व मदिराके नशेमें चकचूर होनेवाले वेचरदासको स्वयम् भान नहीं हो-सकता। जैसे शराबके नशेमें चकचूर बने हुए शराबीको अनेक पुरुषोंकां लत्ताप्रहार और मुँहमें गिरते हुए कुत्तोंके पेशाबका भी भान नहीं रहता। भव्यप्राणिगण ! वेचरदासने "तमस्तरण" नामक लेखमें लिखा है कि "महावीरना निर्वाणने प्रायः वे त्रण के चार पांच सईका जेटलो वखत वीते जैनसमाजना विशेष भागे तमस्तरण आरंभ्युं हतुं अने ते ठेठ अत्यार सुधी चाल्युं आव्युं छे" इस लेखसे श्रुतधर आर्यसुहस्ति महाराज पञ्चमारक में भी जिनकल्पकी तुलनाकारक श्रीमान् आर्यमहागिरी, युगप्रधान कालिकाचार्य महाराज, श्रीमान् शासनप्रभावक खपुटाचार्य, कलिकालसर्वज्ञ श्रीमद् हेमचन्द्राचार्य

महाराज, श्रीमतअकब्बरनृपप्रबोधकश्रीहीरविजयसूरीश्वरजी, न्यायविशारदशतग्रंथप्रणेता श्रीमान् यशोविजयजी उपाध्याय आदि महापुरुषभी तमस्तरण करनेवाले—अंधेरा तैरनेवाले जाहिर होते हैं। हाय! हाय!! वह हाथ क्यों न टूट पड़े जो पूर्वधरोंकी निंदामय वाक्य लिखनेमें सहायक हुए, वह शरीर निन्दक लेख लिखे जानेके पहले ही क्यों न मनुष्ययोनि छोड़ गया कि जिससे पूर्वधर आचार्यों—महात्माओंकी निन्दामय प्रवृति-का कारण बना। इससे तो असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय होता तो अच्छा था परन्तु ऐसे मनका मिलना अच्छा नहीं जिससे पूर्वधर महार्षियोंकी निन्दा करके अधोगतिको प्राप्त हो। इससे तो मनुष्य जंन्मसे ही अंधा, गूंगा और वहिरा बन जाय तो भी अच्छा हो, पर आँखें जीभ और कानका यह फ़ल अच्छा नहीं, जिनसे आचार्योंकी निन्दा करनेसे अनन्त भवों तक ये इन्द्रियां मिलें ही नहीं. और मिलें तो फिर फिर शस्त्रोंसे छेदन भेदन हों। अस्तु, मिथ्यात्वके उदयसें क्या क्या अधम कर्म नहीं होते हैं। हमारे पाठकवर्गको यह कटाक्ष मालूम होता होगा पर यह कटाक्ष नहीं है अधर्मसे बचानेके लिए दयापूर्ण हितवाक्य हैं और हमारी हमेशा यही भावना रहती है कि अगर किसी भी समय पापकर्मके उदयसे जैनशासन प्रभावक पूर्वश्रुतधर पूर्वाचार्योंकी निन्दा करनेकी दुष्टवुद्धि उत्पन्न होने वाली हो तो. इससे हस्तशून्य, कर्णशून्य, जिव्हाशून्य होना भव भवके लिये हम पसन्द

करते है। परन्तु अनन्तभवमें छेदन भेदन जिसका फल है ऐसी बेचरदासके सम नीच बुद्धिको कदापि नहीं चाहते। क्योंकि जिन लोकोंकी आगमशास्त्रसे विरुद्ध क्रियाए है उन क्रियाओंका करना एकप्रकारसे अंधेरा ढोनेके सदृश है। जैसे एक अज्ञानपुर नामक नगरमें बुद्धिहीन नामक शेठ निवास करता था, उसके मूर्खदत्त नामक लड़का था। जब उस–मूर्खदत्तकी उम्र विवाह करने योग्य हुई तो सेठको चिन्ता हुई कि किसी योग्य घरकी लड़कीके साथ इसका लग्न करना चाहिए। इस कामके लिए वह अनेक स्थलों पर घूमता रहा। घूमते घूमते ज्ञानपुर नामक नगरमें प्रवेश करके बुद्धिशाली नामक सेठसे मुलाकात की और उसकी सुमतिनामक पुत्रीकी साथ अपने मूर्खदत्त लड़केका रिस्ता किया। कुछ समयके बाद बड़े समारोहके साथ शुभमुहूर्त्तमें उनका विवाह हो गया। जब सुमति अपने ससुरालमें आई तो पहली रात्रीको ही उसने वहां अजब ढंग देखा। घरके दस पन्द्रह जवांमर्द रात्रीके प्रारंभमें कमर बांधकर तय्यार हो गये और सब अपने अपने हाथमें एक एक टोकरा लेले कर एक दुसरेसे कहने लगे कि 'लो ढोओ–(फेंको) लो ढोओ' तब इन लोकोंकी खाली टोकरियां चलानेरूप अज्ञानक्रियाको देखकर सुमति हेरान हो गई। वह विचारने लगी कि ये मूर्ख क्या कर रहे है? अंधेरेमें खड़े खड़े खाली टोकरियां उठा उठा कर 'लो ढोओ, लो ढोओ' ऐसा कह रहे हैं न तो कुछ लेते हैं न कुछ गेरते हैं यूंही व्यर्थ क्रिया

कब तक करते रहेंगे। देखा तो रातभर उन लोगोंने जीतोड़ परिश्रम किया, जब प्रातःकाल हुआ और घर में प्रकाश आया तो बारह घंटेके अटूट श्रमसे थक कर सोगये। दिनका आधा भाग सोनेमें व्यतीत करदिया, बादमें उठकर अपने अपने काममें लग गये। पीछे सुमतिने अपनी साससे कहा क्योंजी रातको यह सब आदमी क्या कररहें थें ?। सासने उत्तर दिया कि तूं बड़ी मूर्खा है इतना भी नहीं जानती कि सारे घरमें अंधेरा फैल रहाथा उसको टोकरियोंमें भर भरकर बाहर निकाल रहे थे। लो ढोओ, लो ढोओ, करते करते दम खुश्क हो गया तब बारह घंटेके बाद अंधेरा निकाल देनेसे उजाला हुआ और सोगये। यह एक प्रसिद्ध बात है सो भी तूं नहीं समझ सकी ? सुमति फिर पूछने लगी कि क्योंजी यह रिवाज अपने ही यहां है या दूसरे घरोंमें भी है ? सासने उत्तर दिया कि दूसरे घरोंमें क्या सारे शहरमें है। सुमति विचार करने लगी कि इन मूर्खोंको समझानेके लिए प्रथम इनके अनुकूल होना पड़ेगा ऐसा निश्चय करके बोली कि सासुजी ! मैं तो योंही हसती हूं क्या हमारे यहां अंधेरा नहीं होता और क्या वह नहीं निकाला जाता ? अवश्य होता है और निकाला भी जाता है। मैं खुद मेरे इतने बड़े घरसे अकेली ही सब अंधेरेको बाहर निकालतीथी इस लिए जब सब आदमी घरपर आवें तब उनको कह देना कि आज सब सोजाओ अपनी बहु अकेली ही सारे घरका अंधेरा दूर कर-देगी। सास बड़े आश्चर्यमें मग्न होकर विचार करने लगीकि जिस

अन्धेरेको दस दस पन्द्रह पन्द्रह आदमी बड़ी मुश्किलसे ढो सकते हैं उस अंधेरेको यह अकेली किस तरह ढोसकेगी अस्तु, हाथकङ्कणको आरसी क्या, सायंकालके समय वृद्धाने घरके सब मनुष्योंके सामने वहुका ईरादा जाहिर किया। किसीने भी न माना कि यह बात सच्च होगी, तो भी सुमतिने उन लोकों से कहाकि आजकी रात तो देख लीजिए, जो मेरेसे आज बराबर कार्य न हो सके तो फिर कल आप ही कमर बांधियेगा। आखिरकार सबको समझा कर सुला दिये। ये लोग बहुत समयसे अंधेरा निकालनेकी अंध क्रियासे ऐसे थके हुए थे कि सोते ही बेभान होकर निद्रावश हो-गये बहुत दिन चढजानेके बाद जब उनकी आंखें खुलीं तो देखा कि घरमें उजेला ही उजेला हो रहा है। सब घरके मनुष्य सुमतिको रत्न मानने लगे। सासकी खुशीका तो पार ही न रहा। जब यह वात एकसे दूसरेके और दूसरेसे तीसरेके घर पहुंची तो क्रमसे सारे शहरमें फैल गई यह वात सुन सुनकर सब हैरान हो-गये और कहने लगे कि यह बात कभी नहीं बन सकती। जैसे आजकलके नास्तिकशिरोमणियोंको शास्त्रसम्मतकर्मफलमें भी आश्चर्य होता है, अथवा सूत्रानुकूलआचार्यप्रणीततत्त्व भारे कर्मियोंकी समझमें आ जाय तो भी अपनी प्रथम कीहुई प्रतिज्ञा भंग न होजाय इस डरके मारे अनन्तसंसारको बढ़ाने वाली मिथ्याकल्पना करके (जैसा तमस्तरणके लेखमें बेचरदासने की हैं,) कह देते हैं कि " अमुक भागमें मूलपुरुषके मूल विचार

नहीं हैं। अमुक भाग नैमित्तिक है, अमुकभाग आग्रहजन्य है, अमुक भाग आलङ्कारिक है, अमुक भाग रूढिजन्य है" इत्यादि। हम उन नास्तिकशिरोमणियोंके हितार्थ लिखते हैं कि विनाकारण ऐसी भ्रमणामें पड़ कर "स्वयं नष्टः अन्यान् नाशयति" ऐसा क्यों करते हो। नरक निगोदोंके दुःखोंसे जरा डरो और शास्त्रका अवलम्बन करो। इनही अपलक्षणोंसे अनन्तवार दुर्गतिकी अनन्त वेदनाएं सहन करके पुनः पुनः उसीमें पैदा हुए हो। कोई महान् पुण्योदयसे मनुष्यजन्म पाये हो उसे मिथ्यात्वमोहित होकर श्रीपूर्वधराचार्योंने जो वातें सत्यरूप कथन कीहैं उनको "आलङ्कारिक, अनुकरणजन्य, रूढिजन्य" आदि वाक्जालसे खोटी कहकर नाहक क्यों हार जाते हो। तथा नरक निगोदके अनन्त दुःखोको प्राप्त करनेकी तय्यारी क्यों करते हो। यह तो ऐसा हुआ कि जैसे किसी असत्य वादीने कहा कि फलाने ग्रंथमें अमुक विषय विल्कुल नहीं है, तव उस ग्रंथके अभ्यासीने कहा कि शर्त्त लगाओ तो हम दीखा देवें तव उस दुराग्रहीने दोसौ रुपयोंकी शर्त लगाई, जव वह पाठ उसी ग्रंथमेंसे उस अभ्यासीने दिखाया तव वह हठी कहने लगा कि यह पाठ तो मूल पुरुषके मूलविचार रूप नहीं है, तव वही पाठ दूसरी जगहसे वताया तो भी उस हरामीने शर्त्तके रुपैये वचानेके लिए झट कहदिया कि यह पाठ तो नैमित्तिक है, फिर भी उस ग्रंथके अभ्यासीने जिस विषयका उस हरामज़ादेने निषेध किया था उसी विषयका साधक पाठ उसी ग्रंथमें अन्यस्थलपर वताया

तो एक तो वह हठी था और दूसरे रुपयोंके देनेका भी भय होनेसे विनाशर्मका झट बोल उठा कि यह पाठ तो आग्रहजन्य है, फिर उसी ग्रंथके अंदर अन्य जगह पर उसी विषयका पाठ चौथी बार बताया तो वह कहने लगा कि यह तो आलङ्कारिक है। इसके बाद उस सत्यप्ररूपक ग्रंथके अभ्यासी पुरुषने फ़िर भी अन्यान्य पाठ उसी विषयके उसी शास्त्रमें बताए तब वह दुराग्रही कहीं अनुकरणजन्य, कहीं रूढ़िजन्य है ऐसे कहकर दोसौ रुपये न देने पड़े ऐसे विचारसे अपनी हठको नहीं छोड़ी। इस दुराग्रहीके दुराग्रहको अच्छी तरह समझकर वहां पर जो सत्ताधिकारी न्यायी पुरुष उपस्थित थे उन्होंने उस मृषावादी अन्यायीका मुँह काला करके गधे पर चढ़ाकर नगरके बाहर निकाल दिया। यदि अबभी कोई ऐसा न्यायी सत्ताधिकारी धर्मात्मा मौजूद हो तो यह बात हम निःसन्देह कह सकते है कि आगमशास्त्रमें भी " आग्रहजन्य आलङ्कारिक वाक्य है " इत्यादि वाक्‌जालको रचनेवाले आधुनिक कदाग्रहियोंकी भी अवश्य उस असत्यवादी जैसी दशा करे। हम पाठकवर्गको सावधान करते हैं कि याद रखिएगा कि कोई नास्तिकशिरोमणि आगमके विषयमें यदि कहे कि, " अमुकभाग रूढ़िजन्य है या अमुकभाग आग्रहजन्य है या अमुकभाग नैमित्तिक है इत्यादि ' तो उस पुरुषको असत्यवादी और वक्रवादी समझना चाहिए क्यों कि अपने आगमशास्त्र आजतक तत्त्व के विषयमें ज्यों के त्यों अविच्छिन्नपणे चले आते हैं। हां, कितनाक भाग

विच्छेद तो जरूर हो गया है परन्तु जो विद्यमान है सो बराबर मान्य करने योग्य हैं। उन्हें आग्रहजन्य और नैमित्तिकादि है ऐसा कहना मूढताकी निशानी है। अगर कोई भी आस्तिक भाई इस-बात पर सन्देह करेगा तो भी महती हानी उठायगा। इस लिए हम उनको इतनी ही चितावनी करते है कि **श्रीहरिभद्रसूरि महाराज, श्रीहेमचन्द्राचार्यजी** महाराज, नवाङ्गी टीकाकार **श्रीमद् अभयदेवसूरि, श्रीमलयगिरि** महाराज के वचनोंसे विरुद्ध आज-कलके नास्तिकोंने जो बचन सुनाएं या जो लिखें हैं उनको हला-हल जहर जानना चाहिए, और याद रखना चाहिए कि उनकी हवा भी बहुत बुरी है। इन नास्तिकोंके सरदारका परिचय तुमको अच्छी तरहसे है, जिसने पूर्वाचार्योंकी निन्दा करके अपने अधमाधम विचारमय हृदयका पूर्णपरिचय दिया है। आजकल नास्तिक छापेवाले अपने इस नवीन सरदारको देखकर फ़िदा फिदा हो रहे हैं परन्तु इस श्रुतधरआचार्यादिके निन्दककी स्तुतिसे हमारी क्या गति होगी इसबातको वे अज्ञानवश भूलही गये हैं। और जैनशैलीके अनभिज्ञ एक मूढ मनुष्यकी बातें ठीक मालूम पड़ती है एवम् पूर्वधर प्रभावक पुरुषोंकी कथन कीहुई देवद्रव्यादि विष-यक वातें ठीक मालूम नहीं पड़तीं। आह ! कैसी मूढ़ता, जिससे जराभी सन्मार्ग नहीं सूझता ! ॥ ओह ! मैं बहुत दूर निकल गया, मेरे प्रिय पाठक घबराए होंगे और उस अंधेरे के उदाहरण को जानने-के लिए उत्सुक हो रहे होंगे अत एव इस विषयको यहीं छोड़ना

पड़ता है, अन्यथा आजकलके नास्तिकोंकी लीलाके विषयमें एक ग्रंथ लिखा जासकता है। प्रिय पाठकगण! जब इस प्रकार शहरमें बात फैलीकि "बुद्धि हीन सेठके लड़के मूर्खदत्तकी स्त्री सुमति अपने विशाल महलके भीतरसे अकेली ही अंधेरेको बाहर निकालती है" तब जो पुण्यशाली लोक थे, उन्होंने सेठके घर जाकर प्रार्थना की कि अपनी चतुर वधू हमारे घरका भी अंधेरा दूर करे ऐसा प्रबंध करदीजिएगा। लोकोंकी इस प्रार्थनाको मानकर सेठने सुमतिको आज्ञा दी कि प्रियबेटी! इन सबके घरोंका भी अंधेरा दूर करनेका तुमको यत्न करना चाहिए। सुमति अपने ससुरकी आज्ञानुसार उनलोकोंको तसल्ली देकर कहने लगी कि आप आनन्दसे सोजाईएगा, मैं अपनी अद्भुत शक्तिसे अपने घरमें ही रहकर तुम्हारे घरका सब अंधेरा दूर कर-दूंगी। जो जो लोक सुमतिकी बात मानकर सोगये, उनका सदैवके लिए अपने अज्ञानपरिश्रमका दुःख दूर हुआ और जिनलोकोंने उसकी बात पर विश्वास नहीं किया और सोचा कि यह बात कदापि नहीं हो सकती, उन लोकोंने न तो उससे प्रार्थनाहीकी और न अंधेरा ढोनेरूप अंधक्रियाके घोरकष्टसे मुक्त हुए। जब सुमति की प्रशंसा बादशाहके कानों तक पहुँची तो उसने सेठको बुला कर कहा कि क्या यह बात सत्य है? हमको मालूम हुआ है कि शहरके अनेक घरोंका अंधेरा तुम्हारे लड़केकी स्त्री अकेली ही निकालती है। सेठने अर्ज़ की कि जी हुजूर यह बात सच्च है।

बादशाहने कहा कि तब हमारे राजमहलका अंधेरा दूर करनेके लिए जो दोसौ नोकरोंकों तनूखा देनी पड़ती है उस खर्चको मिटा दो तो अच्छा हो। सेठने सुमतिको वहीं बुलाकर बादशाह की प्रार्थना सुना दी। सुमति बादशाहके सन्मुख हाथ जोड़कर अर्ज़ करने लगी कि, हुजूर! आपकी आज्ञानुसार मैं अकेली ही सब काम कर दुंगी फिक्र मत कीजिएगा। बारह घंटेके बाद आप देख लीजीएगा कि अगर अंधेरा रह जावे तो आप आज्ञा देंगे वह दंड उठानेको तय्यार हूं, बादशाहने सब नौकरोंको सीख दे दी। दूसरे दिन जब उठ कर देखा तो अंधेरा नदारद! (नहीं पाया) बादशाह विस्मित हो गया। असलमें तो विस्मय होने की तो कोई बात ही नहीं थी क्यों कि कुदरती नियमानुसार ही बारह घंटे के बाद अंधेरा दूर हो जाना ही चाहिए था, पर अज्ञानीयोंको तो आश्चर्यका ही कारण था, जैसे कि आजकलके नरकगामिनास्तिकोंको सूत्रकी युक्तिसिद्ध बातों पर भी आश्चर्य होता है। बादशाहने सुमतिको हज़ारों रुपये भेट किये और शहरमें ढंढेरा पिटवाया कि तमाम मनुष्य अंधेरा ढोनेरूप असह्यकष्ट से बचनेके लिए सुमतिसे प्रार्थना करो और उसकी अद्भुत शक्तिका लाभ लेकर सुखी बनो। कितनेक मूढ मनुष्योंने इस ढंढेरेको स्वीकार नहीं किया, स्वीकार न करनेका कारण मात्र इतना ही था कि वे लोक इस बातका संभव नहीं मानते थे। शहरके बहुतसे बुद्धिमान मनुष्य उन्हें समझाते रहे और कहते रहे कि ' हमने

हमारे घरके अंधेरेको प्रत्यक्ष दूर होते देखा है, तो भी उन लोकोंके कथनको असत्य मानते रहे। अन्तेमें बादशाहने फ़रजियात (Compulsory) क़ायदा जारी किया तो भी उन मूर्खोंकी समझ में नहीं आया कि एक तो उम्रभर अंधेरा ढो ढोकर मर-जाएंगे और दूसरे राजआज्ञा भंग होनेसे दंडित होंगे, इस विचार-के अभावके कारणसे राजाज्ञाको भी नहीं माना। आखिरमें बादशाहने कुपित होकर उन हठवादियोंको शिर मुंडाकर, नाक कान कटवाकर काला मुँह करवानेके वाद गधे पर चढ़ाकर काले पानी भेजवा दिया। अव पाठकवर्ग इसके उपनयकी तरफ़ ध्यान दीजिए कि आजकल नवीन पंथको चलानेकी इच्छासे देवद्रव्यके भक्षणमें कुछ हर्ज नहीं है, उस देवद्रव्यसे शिक्षा देनी चाहिए, प्रथम प्रभुके मन्दिर गांव बाहिर थे, सुविहितगच्छके धोरी श्रीहरिभद्राचार्य जैसे प्रभावक पुरुषोंको भी 'चैत्यवासी थें' महावीर स्वामीके पीछे दोसो तीनसो या चारसो पांचसो वर्षों-के वाद जैनसमाजका तमस्तरण शुरू हुआ, इत्यादि अनन्तकाल-तक संसारमें रुलानेवाली अनेकवातोंके कहनेवाले और इनके अनुमोदनकरनेवाले नीच अधमात्माएं जिन आकाशप्रदेशोंको अवगाहन करके रहतें है उन आकाशप्रदेशात्मकस्थानको अज्ञानपुर नामक नगर समझे, और सूत्रमर्यादाके लोपी पेटके लिए अज्ञानांध मनुष्योंको खुश करनेके लिए ज्यों दिलमें आवे त्यों वक-वाद करने वालें, पूर्वधराचार्योंके निन्दक पुरुषोंके सहवास

से जिनलोकोंकि वुद्धि बिगड़गईहै परन्तु भद्रप्रकृतिके कारण भाविशुभोदय है उन्हें जात्यपेक्षया **बुद्धिहीन सेठ** समझना चाहिए, और उनके शास्त्रशैलीविरुद्ध जो विचार हैं सो ही **मूर्खदत्त** नामका लड़का है। ये सब मिथ्यात्वोदयसे उन्नतिकी इच्छासे क्रिया करतेहैं परन्तु सम्यक्त्वभ्रष्ट करणी होनेसे अंधेरा ढोरहे हैं। अब जो सूत्रमार्गके अनुसारी पूर्वाचार्योंके प्रशंसक देवद्रव्यके रक्षक तमस्तरण नामक लेखके विरोधी महात्माओंका जो स्थिति स्थान (आकाशप्रदेशात्मक) है सो **ज्ञानपुर** है। और सूत्रानुसार प्ररूपणा करने वाले पूर्वोक्तविशेषणविशिष्ठ जो महात्मा पुरुष हैं वेही जात्यपेक्षया **बुद्धिशाली** सेठ है, और उनकी प्राचीन महात्माओंके अनुकरणमें लगी रहनेवाली और सूत्रसिद्धमार्गका उपदेश देने वाली जो मति है वही **सुमति** है। इन प्राचीन रूढियोंके पालक जो कि प्राण चले जाय तो भी शुद्धमार्गके लोपक नहीं ऐसे अपने आत्मपितासे सुमतिमें भी अपूर्वगण आये हुए थे। इस सुमतिकी शरण जिन जिन लोकोंने ली उन्होंका भवभवका अन्धेरा ढोना तो गया सो गया परन्तु हमेशा निवास करनेके लिए कैवल्यप्रकाशने अदृष्टपूर्व मोक्षधाम भी दिखा दिया। कदाग्रहियों के स्थानापन्न जो हठी नास्तिक लोक हैं उनमेंसे जिन मूढोंने बादशाहके स्थानापन्नपुण्यमहाराजोके हुक्मसे विरुद्ध होकर सुमतिके स्थानापन्न श्रीसिद्धसेन दिवाकर, देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण, हरिभद्रसूरि, हेमचन्द्राचार्य और यशोविजय उपाध्याय जैसे

महात्माओं की मतिका शरण नहीं लिया उन भाग्यहीनोको अज्ञानरूप गधेपर चढ़कर गुरुभक्तिरूपकर्णशून्य और विवेकरूपनाकरहित, मिथ्यात्वरूप मसीसे किये हुए काले मुखसे नरक और निगोदरूप कालेपानी अनन्तकालके लिए जाना पड़ताहै। अत एव बुद्धिमान् पुरुषोंको उचितहै कि नरकगति और तिर्यंचगतिके भयङ्कर दुःखोंसे बचानेवाले सम्यक्त्वको प्राप्त करके मिथ्यात्वको जलञ्जली देदेवें, जिससे कर्मबंधका मुख्यहेतु मिथ्यात्वरूप स्थंभ टूट जानेसे संसारका प्राबल्य मन्द होजायगा। और उसी सम्यक्त्वके प्रभावसेही मिथ्यात्त्वहेतुके हटजानेसे अविरति कषाय और योगरूप हेतुओंका भी शनैः शनैः नाश हो जाता है, और किसी पुण्यात्माको सम्यक्त्व प्राप्त होनेसे एकदम ही नाश होजाता है। अतः संसारके अभावका असाधारण कारण ज्ञानिमहात्माओने मिथ्यात्वनाशक सम्यक्त्वको ही कहा है। इस लिए भवभीरु प्राणियोंको सम्यक्त्वसे कदापि पतित नहीं होना चाहिए, और अपनेमें शास्त्रीयज्ञान हो तो सम्यक्त्वसे पतित होते हुए दूसरे मनुष्योंको बचाना चाहिये। इस विषयमें **जैनधर्मप्रसारक सभाके** मंत्री महाशयको अंतःकरणपूर्वक सहस्रशः धन्यवाद दिया जाता है कि उन्होंने **बेचरदास**को अपनी सभामें बुलाकर कितनेक भाषण सम्बन्धी उपयोगी प्रश्न पूछकर उसके उत्तरसे ही जगत्को ज़ाहिर करदिया कि **बेचरदास** झूंठा है। ढूंढिये मूल बत्तीस सूत्र मानते हैं तो **बेचरदास** पूरे ग्यारह सूत्र भी नहीं मानता! जहां

जबावमें रुक जाता है वहां पर 'मेरेको याद नहीं है' 'मैं अपने अभिप्रायसे कहता हूँ' इत्यादि बातोंसे साबित होता है कि बेचरदासका भाषण आधार रहित ही नहीं बल्कि कपोलकल्पित है। इस विषयको विशेषरूपसे मालूम करनेके लिए "जैनधर्म-प्रकाश मासिक" अङ्क ३ पृष्ठ ८९ पुस्तक ३५ को देखना चाहिए। संसारमें सर्वोत्तमपदार्थ सम्यक्त्व ही है। यथोक्तं सूत्रे-

"दंसण भट्ठो भट्ठो, दंसणभट्ठस नत्थि निव्वाणं।
सिज्झंति चरणरहिया, दंसणरहिया न सिज्झंति ॥ १ ॥"

भावार्थ—जो लोक सम्यक्त्वसे पतित हो गयेहै वेही पूरे पतित माने जाते है। क्योंकि सम्यक्त्वसे पतित हुएको निर्वाणकी प्राप्ति नहीं होती। चारित्रसे पतित हुए मनुष्य सिद्धहोसकतेहै परंतु दर्शनसे रहित मनुष्य कदापि सिद्ध नही होसकता। इस लिए आजकलके नास्तिक लोकोंके सहवाससे वचना चाहिये क्योंकि वे लोक सिद्धान्तसे विरुद्ध होनेसे "देवद्रव्यका मालिक संघ है उस द्रव्यको किसीभी प्रकारसे व्यय करसकतेहैं" इत्यादि सूत्रविरुद्ध बातें कहते हैं और कितनेक नास्तिक तो यहां तक बोल उठतेहैं कि "आजकलके साधु, साधु पदवीके योग्य नहींहै" हम पुछते हैकि अगर त्यागी गीतार्थ साधु महाराज यदि साधुपदवीके योग्य नहींहैं तो क्या तुह्मारे जैसे कपोलकल्पित निराधार गप्पबाज़ मृषावादी योग्यहैं ? जिनको जैनशास्त्रके रहस्यका विल्कुल भान ही नहींहैं। सुनाजाता है कि

कितनेक नास्तिकोंने तो होटलोमें जा जा कर अभक्ष्यभोजन और अपेयपानकरके उन्मत्तता प्राप्त की और उस उन्मत्तावस्थामें अभिमानसहित बोल उठतेहैं कि, " साधु लोक हमारे जूते उठाने लायक भी नहींहैं " मगर उन मिथ्याभिमानियोंको मालूम नहीं कि अनेकजातके अभक्ष्य भक्षणकरनेसे और उत्सूत्रकी प्ररूपणासे उनका (मिथ्याभिमानियोंका) मुँह ऐसा सावद्य बनगया है कि साधुलोक उनके जूते उठानेके लिए तो क्या उनके मुहमें पेशाब या बडी नीति करनेके लीये भी नहीं जासकते । मतलब कि वे लोक अपनी शक्ति और त्यागवृत्तिका विचार किये बिनाही ज्यों दिलमे आताहै त्योंही बोलउठतेहैं । ऐसे नास्तिकमनुष्योंसे सावधान रहना चाहिए, नहीं तो स्वयम् डूबते मनुष्य औरको ले डूबतेहैं इसी तरह स्वयम् नरकगामीनास्तिक अन्यको भी नरकगामी बना देताहै । यद्यपि प्रभुमहावीरकी असीमकृपासे उन लाखों नास्तिकोकी संख्या एकत्र हो जाय तो भी हमारे एक आत्मप्रदेशकी श्रद्धाके असंख्यातवें भागको भी नहीं हिला सकती, अतः उन नास्तिकोंके मण्डलसें हमको हानि नहीहै पर हमारे बहुतसे भोले आता नहीं नास्तिकोंके वचनरूप अंधेकूएंमें न गिर जाय इस लिए हमको चितौनी करनी पड़ी है । अगर हम जानते हुएभी चूप बैठ रहे तो हम गुनहगार ठहरतेहै । फ़ारसीमेंभी कहा है कि " अगर **बिनमके नाबिना ओचास्त वगर ख़ामोश बिनसीनम गुनाहस्त"** इसका भावार्थ यह है कि अगर कोई अंधेकूएंकी तरफ़ जाता है

जो वह उस रास्तेमें चालता रहा तो अवश्य कूएमें पड़ेगा ऐसा देखकर हम खामोश बैठे रहे तो बड़ाभारी गुनाह है। जैन महात्माओंका भी कथन है कि—

" धर्मध्वंसे कृपालोपे, स्वसिद्धान्तार्थविप्लवे ।
अपृष्टेनाऽपि शक्तेन, वक्तव्यं तन्निषेधकम् ॥

भावार्थ—धर्मके नाशमें और कृपा (दया) के नाशमें, अपने सिद्धान्तके अर्थकी विरुद्धतामें विना पूछे भी समर्थपुरुषने उनका प्रतिरोध करनेके लिए तय्यार होजाना चाहिए। इस नियमानुसार अपना कर्त्तव्य समझकर हमभी वेचरदासके उस भाषणका (जो उसने ता. २१ जनवरी १९१९ को मांगरोल जैनसभा बम्बईमें दिया है, और जो ता. २० वीं अप्रेल १९१९ के जैनपत्रमें प्रकाशित हुआ है, जिसको वेचरदासने अपने अभिप्रायसे अवधित स्वीकार किया है) अनुक्रमसे प्रतिवाद (खण्डन) करते हैं। पाठक महाशय तटस्थविचारसे ध्यानपूर्वक पढ़कर अपनी श्रद्धाको स्थिर करेंगे ऐसी उम्मीद कीजाती है।

वेचदास—" देवद्रव्य शब्दज काइं असंबद्ध ने विचित्र छे. जैनो जेने देव तरीके स्वीकारे छे ते राग, द्वेष, धन, स्त्री वगेरेथी मुक्त दरेक कषायथी रहित होय छे, हवे राग द्वेषविनाना प्रभनुं द्रव्य शी रीते संभवी शके ? "

समालोचक—बड़े खेदकी बात है कि पंडितमन्य **वेचरदास** एक देवद्रव्य जैसे शास्त्रसिद्ध तथा युक्तियुक्त शब्दकोभी नहीं समझता हुआ कहता है कि " देवद्रव्य शब्दज कई असंबद्ध अने विचित्र छे. " पाठकोंको मालूम होकि देवद्रव्य शब्द असंबद्ध या विचित्र नहीं है, किन्तु **वेचरदास**का भाषणही असंबद्ध और विचित्र है। असंबद्ध यों है कि किसीभी सूत्रानुसारी **जिनभद्रगणि-क्षमाश्रमण, देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण, हरिभद्रसूरिमहाराज, हेम-चन्द्राचार्यमहाराज** आदि परमप्रभावक आचार्योंके वचनोंसे **वेचरदास**का भाषण सम्बंध नहीं रखता है बल्कि उन प्रभावक पुरुषोंके वचनोंसे विरुद्ध है, और विचित्र इसरीतिसेहै कि आज-तक किसीनेभी ऐसे अक्षर किसीके मुँहसे नहीं सुने कि ' देवद्रव्य जैनागममें नहीं है ' । प्राचीनघोरपापकर्मके उदयसे प्रथम **वेचर-दास**ने ही अपने भाषणमें इन अक्षरोंको सुनाया है इसलिए तमाम जैनसमाजको उसका भाषण विचित्र मालूम हुआ है। अब **वेचर-दास**को विचार करना चाहिए कि असंबद्धता और विचित्रता तुम्हारे भाषणमें है या देवद्रव्यमें ? अगर तुम किञ्चित् भी विचार करते तो ऐसा कभी नहीं कहते कि " जैनो जेने देवतरीके स्वीकारे छ ते राग, द्वेष, धन स्त्री वगेरेथी मुक्त—दरेक कषायथी रहित होय छे, हवे राग द्वेष विनाना प्रभुनुं द्रव्य शी रीते संभवी शके ? " अफ़-सोस है तुम्हारी अक्लपर, तुमने इतनाभी विचार नहीं किया कि **' धूवं दाऊण जिणवराणं '** श्रीरायसेणीसूत्रके इसअभिप्रायसे

देवरूप जो भगवानकी मूर्ति है, उसको आभूषणादि चढ़ाये जाते हैं वे सब देवद्रव्यके नामसे कहे जाते हैं, इससे भगवान्की वीतरागता या कषायमुक्ततामें क्या विरोध आया? हां, यदि यह मानते हों कि देव यानी तीर्थंकरप्रभुका सञ्चितकियाहुआ या स्वसत्तामे रक्खा हुआ जो द्रव्य हो उसको देवद्रव्य कहतेहै तब तो उनकी वीतरागतामें फ़रक़ आता, और "रागद्वेषविनाना प्रभुनु द्रव्य शी रीते संभवी शके" ऐसा तुम्हारा कहना सत्य होता, पर ऐसा तो किसीभी जैनग्रंथमें पाठ नहीं है, फिर यह विकल्प क्यों उठाया? अस्तु, हमको तुम्हारे कथनपर जितना खेद है उससे भी अधिक तुम्हारे कथनका अनुमोदन करनेवाले मूर्खतंत्रियों पर है। क्योंकि तुमने तो वगैर अधिकारके सूत्र पढ़े, जिससे शास्त्रीयनियमानुसार तुम्हारी बुद्धि तो बिगड़नीही चाहिए थी परन्तु तुम्हारे कथनके अनुमोदन करनेवाले तंत्रिआदियोंकी बुद्धि भी बिगडगई! उन्होंने यह भी नहीं सोचा कि जो वीतराग-देवका द्रव्यशब्दसे संबंध नहीं माने तो फिर वीतरागदेवका मन्दिरशब्दसेभी संबंध क्यों माना जाय? इससे तो जिनमन्दिरका ही अभाव हो जायगा। मतलब कि तन्त्रियोंकी तरह मूर्ख बनकर ऐसे नास्तिकपत्रपाठक, कितनेक आस्तिकजन कभी इस बातको मान लें कि 'वीतरागप्रभुका द्रव्यके साथ सम्बंध न होनेसे देवद्रव्य नहीं होसकता,' तब फिर **बेचरदास** जैसे नास्तिक कह देंगे कि " जिनमंन्दिरशब्दभी वास्तवमें नहीं होसकता

क्योंकि ' जिन ' नाम वीतराग देवका है । ऐसे वीतराग-देवका मन्दिर (घर) किसतरह होसकता है ! यदि इस बातकोभी मानलें तो फ़िर नास्तिकताके कारणसे कह दिया जायगा कि अपन " जैन " भी नहीं कहा सकते ! क्योंकि " जैन " शब्दका अर्थ—" जिनस्येमे जैनाः " जिन प्रभुके ये हैं ऐसे अर्थमें " जैन " शब्द बनता है, मतलबकि जिन प्रभुके भक्त—उपासक जैन कहलाते हैं । तो वीतराग प्रभुके " ये है—इनके उपासक जैन हैं ऐसा संभव नहीं इसलिए अपने जैन नाम छोड़ देना चाहिए । क्या इसतरह मालूम होनेपर तत्रिलोक और अन्य जन जिनमन्दिरको या अपने जैननामको छोड देगें ? यदि इसका जवाब नकारमें दिया जायगा तो फ़िर जैसे वीतराग देवसे मन्दिरशब्दका योग होता है और जैनशब्द बनता है वैसे ही देवद्रव्यशब्द क्यो नहीं बन सकता ! प्रिय वाचकगण ! विचार कीजिएगा कि बेचरदास कितना अकलमंद शक्स है कि जो देवमन्दिरको मानता हुआ भी देवद्रव्य का स्वीकार नहीं करता ! जिसको वीतराग देवके साथ मन्दिर-शब्दका स्वीकार है उसको वीतराग देवके साथ द्रव्यशब्द क्यों मंजूर नहीं होता ! क्या बेचरदास एक चक्षुवाले ऊंटकी तरह एक तरफ़की बेलड़ी चरनेवाला है ! जो वीतराग देवका मन्दि-रसे सम्बंध मानता हुआभी द्रव्यका सम्बंध नहीं मानता ।

तटस्थ—देखिये, जिनमन्दिरका स्वीकार करते हुएभी देवद्रव्यका स्वीकार न करनेका कारण बतलाया जाता है । यदि ऐसा मान लेते कि

"देवद्रव्य" नहीं हैं और इस कारणसे यानि उनके ऐसा मान लेनेसे नास्तिक लोक बढ़जाय तो उस द्रव्यको मरज़ी चाहे वैसे कार्यमें लगाकर लोकोंको अधम शिक्षा दी जायकि जिससे नास्तिकसमाज बढ़जाय और दुनियाको धर्मभ्रष्टकरनेका जो इरादा कर रहेंहैं वह पूरा होजाय, इस स्वार्थसे दारुणमृषावादी बनकर "जैनागममें देवद्रव्यका नामभी नहीं है" ऐसी गप्प मारदी है। देव मन्दिरको उडानेसे उसका कोई स्वार्थ नहींहैं इसलिये नहीं उडाया अगर उसमेंभी स्वार्थ होता तो वहभी उड़ादिया जाता। पर स्थान स्थान पर **'जिणहरे गच्छइ गच्छित्ता, वड्ढंतो जिणदव्वं, रक्खंतो जिणदव्वं,** इत्यादि पाठ आते हैं वहांपर इन मूढ लोकोंकी वातोंको कौन माने। चाहेजितना बकवाद क्यों न करे आस्तिकोंपर उसका कुछभी असर नहीं होता, और नास्तिकोंके लिये उनके दुर्भाग्यवश कहनेकी आवष्यकता नहीं। अगर कभी दैवयोगसे भद्रिकआस्तिकों पर नास्तिकोंके भाषणका कुछ बुरा असर पडाभी होगा तो आपकी हितबुद्धिसे लिखी हुई इस पुस्तक के पढ़नेसे दूर होजायगा, ऐसी आशा करता हूँ। अब आप यह बतलाइए कि बेचरदासने जैसा प्रश्न उठाया है यानी "रागद्वेषरहित प्रभुनुं द्रव्य थइ शकतुं नथी," क्या ऐसा प्रश्न पहले किसीका किया हुआ प्राचीन शास्त्रोमें नजर आता है और उसीपर कुछ समाधानभी लिखा गया है?

समालोचक—बेशक, देखिये सम्बोधप्रकरणमें, चौदहसौ

चंव्वालिसग्रंथके कर्त्ता परमप्रभावक–याकिनीमहत्तरासुनु-श्रीमद्-हरिभद्रसूरि महाराज फ़रमाते हैं–तद्यथा

" न हु देवाण वि दव्वं, संगविमुक्काण जुज्जए किमवि।
नियसेवगबुद्धिए, कप्पियं देवदव्वं, तं। ९०।"

भावार्थ-वादी प्रश्न करता है कि सर्वसङ्ग विमुक्त वीतराग देवका द्रव्य नही होसकता ! आचार्य उत्तर देते हैं कि यद्यपि वीतराग देवको द्रव्यसे कुछ सम्बंध नहींहै तथापि उनके सेवक भक्तिके प्रेममें मग्न होकर जो आभूषणादि चढ़ाते हैं वे सेवककी कल्पनासे देवद्रव्यकी गणनामे कहेजातेहैं। इस विषयकी पुष्टिमें फ़िर हरिभद्रसूरि महाराज फ़रमाते हैं कि

" किज्जइ पूआ णिच्चं, बुच्चिज्जइ मे कया जिणींदाणं।
पूआ तहेव देवाण, दव्वमिइ लोअजण भासा. ९२।"

भावार्थ–प्रभुकी पूजा नित्य किजातीहै और करनेवाला कहता है कि मैंने जिनप्रभुकी पूजाकी। पर इससे जिनेश्वर भगवानको सरागताका प्रसङ्ग नहीं आता। इसी तरह जिनदेव भगवान्‌की भक्तिके निमित्तसे कल्पित किया हुआ द्रव्य लोकभाषा में देवद्रव्य कहाजाताहै। परन्तु उससे वीतराग देवको सरागताका प्रसंग नहीं आता।

तटस्थ—अहाहा ! ये तो बहुत अच्छी गाथायें सुनाई जब हरिभद्रसूरि महाराजजैसे परमप्रभावक आचार्यके रचे हुए संबोध-कप्रकरणमें यह बात आ चूकीकि सेवकके कल्पित द्रव्यसे देवमें सरागता नहीं सिद्ध होती तो फिर बेचरदासके बकवादको कौन सच्चा

मानेगा ? । अतः बेचरदासका यह कथन केवल कपोलकल्पित सिद्ध हुआ कि—'जैनागममें देवद्रव्य नहीं है' ऐसे ऐसे पाठ होनेपरभी न मालूम क्या कारण है कि बेचरदास स्वयं मूढ बनकर औरोंको मूढ़ बनाताहै । अस्तु, देवद्रव्यके विषयमें और कोई शास्त्रका प्रमाण सुनाइए ।

समालोचक—देखिये ! नागपुरीयतपागच्छाधीश श्रीमद् रत्न-शेखरसूरी महाराज अपने बनाये हुए श्रीपालचरित्रमें फरमाते है—कि—'

अरिहंतपए धवले, चंदणकप्पूरलेवसियवण्णे ।
अडकक्केयणचउतीसहीयरखं गोलयं गवियं ॥ ८५ ॥
सिद्धपए पुण रत्ते, इगतीसपवालमट्ठमाणिक्कं ।
नवरंगघुसिणविहियप्पलेवगुरुगोलयं ठवियं ॥ ८६ ॥
कणयाभे सूरिपए, गोलं गोमेयपंचरयणजुअं ।
छत्तीसकणयकुसुमं, चंदणघुसिणंकियं ठवियं ॥ ८७ ॥
उज्झायपए नीले, अहिलयदलनीलगोलयं ठवियं ।
चउरिंदनीलकलियं, मरगयपणवीसपयगजुअं ॥ ८८ ॥
साहुपए पुण सामे, समियमयं पंचरायपट्टकं ।
सगवीसरिट्ठमणिं, भत्तीए गोलयं ठवियं ॥ ८९ ॥
सेसेसुं सियपएसुं, चंदणसियगोलए ठवइ राया ।
सगसट्ठिगवण्णा सयरिपण्णमुत्ताहलसमेए ॥ ९० ॥

अर्थः—सफेद रंग वाले अरिहंत भगवंतके पदमें चन्दन और कपूरके लेपसे जिसका सफेद रंग है और जिसमें आठ कर्केतन (सफेद जातिके रत्नविशेष) ओर चौंतीस हीरे हैं ऐसा गोला स्थापन किया। यहां भाव यह है कि आठ प्रातिहार्योंकी अपेक्षासे आठ कर्केतन रक्खे और चौंतीस अतिशयकी अपेक्षासे चौंतीस हीरे रक्खे ॥८५॥

लाल रंगवाले सिद्धपदमे—इकतीस प्रवाल (मूंगिए) और आठ माणिक्य जिसमें रक्खें हैं ऐसा फिर नवीनरङ्गयुक्त केशर करके जिसमें लेप किया है ऐसा बड़ा गोला स्थापन किया. आठ कर्मके क्षयसे उत्पन्न हुए आठ गुणकी अपेक्षासे आठ माणिक्य रक्खे. और इकत्तीस गुणोंकी अपेक्षाते इकत्तीस प्रवाल रक्खे ॥८६॥

पीले रङ्गवाले सूरिपदमें गोमेदनामकपंचरत्नसंयुक्त और जिसमें छत्तीस सोनेके पुष्प है ऐसा चंदन केशरसे लिप्त गोला रक्खा, ज्ञानादिपंचाचारकरके युक्त होनेसे पांच गोमेदरत्न रक्खे, और छत्तीसगुणयुक्त होनेसे छत्तीस सोनेके कुसुम रक्खे ॥ ८७ ॥

नीलवर्णवाले उपाध्यायपदमें चार इन्द्रनीलमणियुक्त और पच्चीस मरकत मणियुक्त नागवल्लीके दल जैसा नीलवर्णका गोला स्थापन किया। द्रव्यानुयोगादि चार अनुयोग युक्त होनेसे ४ इन्द्रनील, और पच्चीस गुणयुक्त होनेसे इतने मरकतमणि समझना ॥८८॥ श्याम रंगसे प्रसिद्ध साधुपदमें पंचराजपट्ट मणि (वैराटरत्न) युक्त और सत्तावीस रिष्टमणि[1] युक्त कस्तूरीसे लिप्तगोला भक्तिसें स्थापन किया.

1-श्यामरत्न विशेष

पंच महाव्रतकी अपेक्षासे पांच राजपट्टक (वैराटरत्न) और सत्तावीस गुणकी अपेक्षासे २७ रिष्टमणि रक्खे ॥ ८९ ॥

बाकी रहे हुए दर्शनादि चार श्वेतपद में ६७ । ५१ । ७० । ५० । मोतियोंसे युक्त चंदनके लेपसे सफेद गोला श्रीपाल राजाने स्थापन किया । यहांपर भीं मोतियोंकी संख्या दर्शनादि गतभेदोंकी अपेक्षासे समझनी चाहिये ॥ ९० ॥

अब पाठकोंको विचार करना चाहियेकि श्रीपाल महाराजने ओलितपके उद्यानमें पूर्वोक्तविधिसे सिद्धचक्रके स्थापनकरनेमें हीरे मोती माणिक्य पन्ने प्रवाल नीलम आदि जो जो द्रव्य चढ़ाया उसको देवद्रव्य नहीं तो क्या कहें ? इससे सिद्ध होता है कि—देवद्रव्य **मुनिसुव्रतस्वामी**के समयमें भी था. इसलिये यह आधुनिक रिवाज नहीं कहा जा सकता ? फिरभी देखो ! यही आचार्य महाराज अपने बनाए हुए **संबोधसप्तति** नामकप्रकरणमें लिखते हैं—कि -

जिणपवयण वुड्ढिकरं, पभावगं नाणदंसणगुणाणं ।

वड्ढंतो जिणदव्वं, तित्थयरत्तं लहइ जीवो ॥ ६६ ॥

अर्थ—ज्ञानदर्शन गुणोंके प्रभावक और जिनप्रवचनकी वृद्धि करनेवाले देवद्रव्यका रक्षण करता हुवा तीर्थंकरपदको प्राप्त करता है. ॥ ६६ ॥

तटस्थ—जिनप्रवचन तथा ज्ञानदर्शन गुणोंकी वृद्धि देवद्रव्यसे कैसे हो सकती है ?

समालोचक—जिनद्रव्यसे अनेक जैन मंदिर बन सकते हैं-इस लिये जहां जहां पर जिन मन्दिर हो वहांके लोग प्रभुदर्शन और पूजनसे अपने दर्शन (सम्यक्त्त्व) को शुद्ध कर सकतें हैं और उनकी निरंतर भक्ति और महोत्सवादि कार्यको देखकर वहुतसे भद्रिकप्रकृतिवाले जीव सुधर जाते हैं-बस यही जिनप्रवचनवृद्धिका कारण सिद्ध हुवा तथा प्रभुभक्तिसे ज्ञानावरणीयकर्मके क्षयोपशमसे ज्ञानकी वृद्धि होति है ।

तटस्थ—अच्छा, देवद्रव्यका रक्षक तो तीर्थंकर गोत्र नाम कर्म उपार्जन करता हैं परन्तु देवद्रव्यके निषेधक या भक्षकोंकी क्या गति होगी ?

समालोचक—उसी ग्रन्थके अंदर पूर्वोक्तआचार्यमहाराज लिखते है कि—

जिणपवयणवुड्ढिकरं, पभावगं नाणदंसणगुणाणं
भक्खंतो जिणदव्वं, अणंतसंसारिओ होइ ॥ ६७ ॥
भक्खेई जो उवेक्खेई जिणदव्वं तु सावओ ।
पन्नाहीणो भवे सोउ, लिप्पेइ पावकम्मुणा ॥ ६८ ॥

अर्थ—जिनप्रवचनकी वृद्धि करनेवाला तथा ज्ञान दर्शन गुणोंका प्रभावक ऐसे देवद्रव्यको भक्षण करनेवाला अनन्तसंसारी होताहै, उपलक्षणसे उसके निषेधकरनेवालेकोभी उत्सूत्रभाषी होनेके कारण अनन्तसंसारी समझना चाहिये ॥ ६७ ॥

जो श्रावक देवद्रव्यका भक्षण करता है तथा भक्षण करते हुए अन्यकी उपेक्षा करता है वह भवांतरमें (बुद्धि) हीन होतहि और पाप कर्मसे लिप्त होता है ॥ ६८ ॥

और देखिए श्राद्धदिनकृत्य—भाष्यत्रय—कर्म्मग्रन्थादि अनेक ग्रन्थके कर्त्ता परम जिनमत प्रभावक **श्रीदेवेन्द्रसूरि** महाराज अपने बनाये हुए प्रथमकर्म्मग्रन्थमें लिखते है कि—

उम्मग्गदेसणा मग्गनासणा देवदव्वहरणेहिं ।
दंसणमोहं जिणमुनि—चेइयसंघाइपडिणीओ ॥ ५६ ॥

अर्थ—उन्मार्गकी देशना (उत्सूत्र भाषण). मार्गका नाश (धर्म्मके साधनको विच्छिन्न करना) और देवद्रव्यका हरण करके जिन मुनि चैत्य (मन्दिर) और साधु साध्वी श्रावकश्राविकादि चतुर्विध संघका, प्रत्यनीक प्राणी दर्शनमोहनीयकर्मको बाधता है ॥ ५६ ॥ अगर देवद्रव्य होताही नहीं तो ऐसे उत्तम महात्मा कर्मग्रंथमें कैसे लिखते है कि ' देवद्रव्य भक्षण करने-वालोंको दर्शनमोहनीयका बध होताहै ' इससे साबित है कि देवद्रव्य था, है, और होगा. धर्मधुरंधर प्राचीन महात्माओंके कथनपर जैन समाजकोजो निश्चय है वह बेचरदासजैसे एक सामान्य मनुष्यके कथनपर कदापि नहीं होसकता । इस लिये बेचरदासने व्यर्थ भाषण देते समय इतनाभी विचार नहीं किया कि—भाष्य—कर्मग्रन्थ—श्रावकदिनकृत्य धर्म्मरत्नप्रकरणटीका आदि

अनेक ग्रन्थके कर्त्ता और आदितपागच्छविरुदधारक **श्री जगच्चन्द्रसूरि**के शिस्य **देवेन्द्रसूरि** महाराजके ज्ञानके आगे मेरा ज्ञान क्या है ? उन महापुरुषोंके सामने मैं ऐसा हूं जैसा सूर्यके सामने खद्योत, इस लिये ऐसे महात्माके वचनोंसे विरुद्ध क्यों भाषण देताहूं ? क्या मेरे भ षणको जैनसमाज मानलेगा ? (मानना तो क्या बल्कि सहस्रशः धिक्कारवाद देगें) अगर **बेचरदास** भाषणसे पहिले यह विचार करता तो ऐसा अनुचितकार्य कदापि नहीं करता, जो एक घातकके पातकसेंभी शास्त्रदृष्टिसें अधिक नीच माना गया है ।

तटस्थ—अगर **बेचरदास**को कर्मग्रंथके इस पाठका भान न रहा हो तो अब इसपाठको देखके सुधर जाय तो क्या आश्चर्य है ॥

इस लिये और भी पाठ लिखें जिससे **बेचरदास**की आत्माको भी लाभ पंहुचे ।

समालोचक—तुह्मारा यह मानना है कि **बेचरदास** सुधर जाए परन्तु यह मानना मेरे ख़यालसे वन्ध्यासे पुत्र प्राप्ति जैसा है, क्योंकि **बेचरदास**ने यह भूल अज्ञानावस्थामें नहीं की है किन्तु पूर्व-जन्मके घोरपापकर्मोंके उदयसे अपने किसी गुप्तइरादेको सफल करनेके लिये जानकर झूठामार्ग पकडा है इसलिये ढूंढियोंसेभी अधम बनकर कह दिया कि–' मैं ग्यारह अंगको मानता हूं और उसमेंभी मिश्रण है "–इस का मतलब यह हैकि ग्यारह अंगमेंसेभी जिसमें देवद्रव्यकी सिद्धि होगी उसमें 'मिश्रणहै' ऐसा कहकर मुक्त हो जाऊंगा

बतलाइए ऐसा हठी आदमी कैसे सुधर सकता है। इस लिये इसके सुधरनेके खयालको हृदयसे दूर कीजिये! और अन्य ग्रन्थोंके पाठोंको सुन लीजिये। देखिये वेही देवेन्द्रसूरि महाराज श्राद्धदिन-कृत्यमें लिखते हैं कि—

"चेइयदव्वं साहारणं च जो दुहइ मोहियमईओ।
धम्मं च सो न जाणइ, अहवा बद्धाउओ नरए ॥१२५॥

अर्थ—जो मोहमोहित मनुष्य चैत्यद्रव्य (देवद्रव्य) और साधारण द्रव्यका नाश करता है वह धर्मको जानताही नहीं या बद्ध-नरकायु है ॥१२५॥ श्रीरत्नशेखरसूरिकृतश्राद्धविधिमेंभी प्राचीन-पुरूषोंकी ऐसी गाथाएं बहुत आती है जिनसे देवद्रव्यकी सिद्धि अच्छी तरहसे होती है. जैसे कि—

" चेइयदव्वविणासे, तद्दव्वविणासणे दुविहभेए।
साहु उविक्खमाणो अणंतसंसारिओ होइ (भणिओ) १२६ "

भावार्थ—चैत्यद्रव्य-सुवर्ण चांदी आदि जो मंदिरका द्रव्यहै उसके विनाशको देखकर और 'तद्दव्वविणासणे दुविहभेए' यानि चैत्यद्रव्यसे प्राप्त किया हुवा द्रव्य (वस्तु) अर्थात् देवद्रव्यसे खरीदे हुए दो प्रकारके पाषाणादि द्रव्यके नाशको देखकर जो साधु उपेक्षा करता है तो वह अनन्तसंसारी होता है।१२६। बस यही तो कारणहै ज्ञान ध्यान छोडकर हम अपना वक्त पुस्तक बनानेमें

लगातेहैं। अगर हम शक्ति होनेपर भी बेचरदासके भाषणकी उपेक्षा करें तो इस कथनानुसार हमारी भी यही दशा होवे, वरना बेचरदाससे हमारा लेशमात्र भी द्वेष नहीं है। देखिये कुमारपालनृपप्रबोधक–कलिकालसर्वज्ञश्रीमद्हेमचंद्राचार्यविरचितत्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्रके दशमपर्वमें लिखाहै कि—

"राज्ञः कुमारपालस्य, तस्य पुण्येन भूयसा।
खन्यमानस्थले मंक्षु, प्रतिमाऽऽविर्भविष्यति ॥ ८३।
तदा तस्यै प्रतिमायै, यदुदायनभूभुजा।
ग्रामाणां शासनं दत्तं, तदप्याविर्भविष्यति। ८४।"

इत्यादि.

अर्थ—उस कुमारपालराजाके बड़े भारी पुण्यसे खुदातेहुवे स्थानमें जल्दी प्रतिमा प्रगट होगी॥ ८३ ॥ तब उस प्रतिमाके वास्ते उदायनराजाने जिन जिन गामोंका शासन (फरमान) दिया था सोभी प्रकट होगा ॥ ८४ ॥ इस षिषयके संवादमें तपोगच्छीयरत्नशेखर-सूरिकृतश्राद्धविधिके छट्ठे अधिकारमें भी ऐसा अधिकार आता है—

तद्यथा-पांशुवृष्टौ भूगता कपिलर्षिप्रतिष्ठिता प्रतिमा श्रीगुरुमुखाज्ज्ञाता कुमारपालनृपेण। पांशुस्थलखानने उदायननृपदत्तशासनपत्राऽन्विता सद्यः स्फुटीभूता। यथावत् प्रपूज्य प्राज्योत्सवैरणाहिल्लपत्तने नीता॥ नव्यकारितगरीयस्तर-

स्फाटिकप्रासादे न्यस्ता। पत्रलिखितमुदायननृपदत्तं ग्रामाकरादिशासनं सर्वं[१] प्रमाणीकृत्य चिरमर्चिता ॥ इत्यादि ॥

अर्थ—कपिलऋषिकरके प्रतिष्ठित श्रीमहावीरस्वामीकी प्रतिमा जो धूलकी वर्षादसे जमीनमें दब गईथी उसे श्री कुमारपालनृपतिके (गुरुमहाराजसे जाननेसे) पांशुस्थलको खुदानेसे उदायनराजाके दिये हुए शासनपत्र (फरमान) के साथ जल्दी प्रकट हुई। उस प्रतिमाको बड़े महोत्सवसे अणहिलपुरपाटणमें लाए नवीन बनाए हुए स्फटिकके बड़े दिव्यमंदिरमें स्थापनकी और उदायनराजाके दिये हुए ग्राम आदि जो शासनपत्रमें लिखेथे वे सब कायम रखकर प्रतिमा की बहुत काल तक पूजाकी।

पाठकजनो! अब विचार करोकि भगवान् महावीरप्रभुके मंदिरमें उदायनराजाने जो गाम वगैरा दिये थे उन्हें देवद्रव्य नहीं तो और क्या कहाजावे? इसी तरह कुमारपालमहाराजने उदायनराजाके फरमान पत्रको कायम रखकर अपने राज्यमेंसे उतनेही ग्रामादि दिये वे देवद्रव्य नहीं तो और क्या?

इसी तरह सिद्धराजजयसिंहने सिद्धाचल और गिरनारजीके लिये जो बारह बारह ग्राम दियेथे सो देवद्रव्य नहीं तो और क्या?

तटस्थ—आपने बहुतअच्छे अच्छे प्रमाण सुनाये और उन प्रमाणोमें प्राचीनसे प्राचीनप्रमाण मुनिसुव्रतस्वामीके वक्तमें हुए

---

१ देखो कुमारपालप्रबन्ध पृष्ठ ६.

हुए श्रीपालमहाराजके उद्यापनका सुनाया। और साबित किया कि उस वक्तमें भी देवद्रव्य था। क्या इससेभी प्राचीन कोई प्रमाण आपके पास है कि मुनिसुव्रतस्वामीसे जिससे पहिले भी देव-द्रव्य सिद्ध हो।

समालोचक—हां, पंद्रहवें तीर्थङ्करश्रीधर्मनाथस्वामीके वक्तमें भी देवद्रव्य था। जैसे श्रीहेमचन्द्राचार्यमहाराज अपने बनाए त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्रमें चौथे पर्वके पांचवें सर्गमें लिखते हैं.

" पतिप्रसादादुद्भूता, ये प्राज्या रत्नराशयः।
अनन्तं काञ्चनं यच्च, ये वा रजतसञ्चयाः॥ ११४॥
मुक्तामया वज्रमया, जात्यरत्नमयाश्च ये।
संमिश्रा ये च नेपथ्यसमुदायाः सहस्रशः॥ ११५॥
यच्चाऽन्यत्कोशसर्वस्वं, सप्तक्षेत्र्यां तदर्प्यताम्।
महापथप्रस्थितानां, पाथेयं हीदमादिमम्॥ ११६॥"

भावार्थ—पुरुषसिंहवासुदेवके पिता जब असाध्यरोगसे पीडितहुए तब उसकी माताने 'मैं विधवा न कहलाउं' इस खया-लसे चितामें जलनेकी तय्यारीकी, तब लड़का माके पास मिलनेको गया। उस वक्त माता कहतीहैकि हे पुत्र! पतिकी कृपासे उपार्जित की हुई जो बड़ी रत्नोंकी राशी है और वहुत काञ्चन है और चांदीका समूह है तथा मोती हीरे रत्नमय जो

आभूषण है और इनसे मिश्रित जो हज़ारों आभूषण हैं और मेरे पास जितना कोश (खजाना) है इन सबको सात क्षेत्रमें लगादेना। क्योंकि परलोकमें जाते हुए जीवको यह पाथेय (भत्ता) है। देखिये इनसात क्षेत्रमें देवमंदिर भी हैं और पुरुषसिंहने अपनी माताके कथनानुसार जो देवमंदिरमें लाखोंका द्रव्य समर्पणकिया वह देवद्रव्य नहीं तो और क्या ? इससे सिद्ध हुआ कि–धर्मनाथ स्वामीकी वक्तमें भी यह रीवाज था. अगर तमाम तीर्थङ्करोंकी वक्तका वर्णन लिखें तो एक बड़ी भारी पुस्तक बनजाय और पाठकवर्गको और भी अनेकशास्त्रोंके पाठ सुनाने हैं इसलिये इसविषयमें ज्यादा लिखना नहीं चाहते। देखिये **सोमधर्मगणिमहाराज उपदेश सप्ततिके** पांचवे अधिकारमें फरमाते हैं कि—

'ज्ञान द्रव्यं यतोऽकल्प्यं, देवद्रव्यवदुच्यते।
साधारणमपि द्रव्यं, कल्पते सङ्घसम्मतम् ॥ २० ॥
एकैत्रव स्थानके देववित्तं, क्षेत्रद्वय्यामेव तु ज्ञानरिक्थम्।
सप्तक्षेत्र्यां स्थापनीयं तृतीयं, श्रीसिद्धान्ते जैन एवं ब्रवीति ॥१॥"

भावार्थ—देव द्रव्यकी तरह ज्ञानद्रव्य भी अकल्पनीय कहा जाता है, सङ्घकी सम्मतिसे साधारणद्रव्यको सातक्षेत्रमेंसे किसी क्षेत्रमें लगा सकते है ॥ २० ॥ प्रथम देवद्रव्य है सो एक क्षेत्रमें (देवमंदिर प्रभुपूजादि काममें) ही लगाया जा सकता है, और दूसरा ज्ञानद्रव्य दो क्षेत्रमें (ज्ञानकार्यमें और देवकार्यमें)

उपयुक्त हो सकताहै, और तीसरा साधारणद्रव्य सातों क्षेत्रोंमे लग सकताहै ऐसा सिद्धान्तमें कहा है । औरभी प्रमाण लीजिये श्रीरत्नखेखरसूरिमहाराज श्राद्धविधिके अन्दर प्राचीन आगम-शास्त्रकी गाथाएं लिखते हैं:—

" चोएइ चेइयाणं, खित्तहिरण्णे अ गामगोवाइ ।
लग्गंतस्स उ जइणो, तिगरणसोही कहं नु भवे ॥ १ ॥
भन्नइ इत्थ विभासा, जो एयाइं सयं विमग्गिज्जा ॥
तस्स न होई सोही, अह कोइ हरिज्ज एयाइं ॥ २ ॥
तत्थ करंतो उवेहं, जा सा भणिया उ तिगरणविसोही ।
सा य न होइ अभत्ती, तस्स य तह्मा निवारिज्जा ॥ ३ ॥
सव्वत्थामेण तहिं, संघेण य होइ लग्गियव्वं ।
सचरित्ताचरित्ताण य, सव्वेसिं होइ कज्जन्तु ? ॥४॥ "

भावार्थ—अगर साधु चैत्य संवन्धि क्षेत्र हिरण्य (सोना) गांव, गोप वगैराकी चिन्ता करे तो तीन प्रकारके संयमके धारण करनेवाले साधुकी त्रिकरणशुद्धि किस तरह होसके ? अव दो गाथाएंसे ऊपरकी शङ्काका समाधान करते हैं—इस विपयमें विकल्प है—यानि साधुको इस विपयकी चिन्तामें त्रिकरणशुद्धि होती भीहै और नहीं भी होती । अगर साधु देवद्रव्यकी वृद्धि करनेके लिये स्थान स्थान पर स्वयं याचनाकरे तो विशुद्धि नहीं होती. और जो देवद्रव्यादि पूर्वोक्त वस्तुके विनाशको देखकर उसके रक्षणमें

उद्यम करे तो त्रिकरण शुद्धि होतीहै ॥ २ ॥ इसलिये संपूर्ण बलसे चारित्रवाले और चारित्र वगैरके सकलसङ्घको उस काममें लग जाना चाहिये क्योंकि वह सबका काम है ॥ ३ ॥

तटस्थ—आपने पूर्वाचार्योंके ग्रन्थोंके बहुतही अच्छे प्रमाण दिये है उन प्रमाणोंको सुनकर मैं रोमाञ्चित हुवा हूं। परन्तु आजसे लगभग पंद्रहसौ वर्ष पेश्तर चोदहसौ चुम्मालींस ग्रन्थोंके कर्त्ता परमप्रभावक याकिनीमहत्तरासूनु श्रीमद् **हरिभद्रसूरि महाराज** नाम के आचार्य हुए हैं जिनको श्वेताम्बरशास्त्रानुयायी सबगच्छवाले (तपोगच्छ, खरतरगच्छ, बड़गच्छ, पार्श्वचंद्रगच्छ, कवलागच्छ आदि सव गच्छवाले) अत्यन्त आदरपूर्वक मानते हैं इस देवद्रव्यकी सिद्धिके विषयमें आप इनके जितने प्रमाण सुनाएंगे उतनाही जैनसमाजको विशेष निश्चय होगा, तथा नवाङ्गी-टीकाकार **श्रीअभयदेवसूरि** महाराजके वचनभी प्रायः सभी गच्छ-वालोंको मान्यहैं अतः उक्त महात्माओंके वचन सुनानेकी कृपा करें ! जिससे सवकी श्रद्धा सुद्ध हो।

समालोचक—पूर्वोक्तविशेषणविशिष्ट-श्रीमद् हरिभद्रसूरि महाराज अपने वनाए हुए पूजाप्रकरण नामके चौथे पञ्चाशकमें फरमाते हैं कि—

> " सिद्धत्थयदहिअक्खय, गोरोयणमायरेहिं जहलाहं।
> कंचणमोत्तियरयणाइदामएहिं च विविहेहिं ॥ १५ ॥ "

व्याख्या—सिद्धार्थकाः सर्षपाः । दधि च प्रतीतं । अक्षताश्च तण्डुलाः । दध्यक्षतम् । गोरोचना गोपित्तजा । एतेषां द्वन्द्वोऽतस्तदादिभिरेतत्प्रभृतिभिः । आदिशब्दाच्छेशमङ्गल्यवस्तुपरिग्रहः । यथालाभं यथासंपत्ति । काञ्चनमौक्तिकरत्नादिदामकैश्च कनकमुक्ताफलमाणिक्यमालाभिश्च विविधै र्बहुप्रकारैः ।

भावार्थ—सिद्धार्थ-दहि-गोरोचन आदि करके तथा सोना, मोती, रत्न आदि मालाओं करके विविधप्रकारसे पूजा करनी ॥ १५ ॥ अब पाठक जनोंको विचार करना चाहिये कि **हरिभद्रसूरि** और **अभयदेवसूरि** महाराजके किये हुए मूल तथा टीकाके वचनानुसार प्रभुको सोना-मोती-हीरे आदि जो चढ़ाये जावें वे देवद्रव्य नहीं तो और क्या ? बस साबित हुवा कि **हरिभद्रसूरि** महाराज और **अभयदेवसूरि** महाराज देवद्रव्य की बातको स्वीकार करते थे । फिर आगे चलकर प्रतिष्ठाप्रकरणनामके आठवें पञ्चाशक में हरिभद्रसूरि महाराज फरमाते हैं कि—

“ उक्कोसिया य पूजा, पहाणदव्वेहिं एत्थ कायव्वा ।
ओसहिफलवत्थसुवण्णमुत्तरयणाइएहिं च ॥ २९ ॥”

श्रीअभयसूरिकृता व्याख्या—उत्कर्षिका उत्कर्षवती । चशब्दः पुनरर्थः । पूजा पूजनमर्हद्बिम्बस्य प्रधानद्रव्यैः प्रवरपूजाङ्गैश्चन्दनागरुकर्पूरपुष्पादिभिः । अत्राऽधिवासनाऽवसरे । कर्त्तव्या विधेया ।

औषधिफलवस्त्रसुवर्णमुक्तारत्नादिकैश्च प्रतीतैरेव । नवरमौषध्यो व्रीह्यादयः । फलानि नालिकेरदाडिमादीनि इतिगाथार्थः ॥ २९ ॥

भावार्थ—औषधी–फल–वस्त्र सुवर्ण–मोती और रत्नादि प्रधान-द्रव्यसे भगवान्की उत्कृष्टपूजा करनी ॥ २९ ॥ इसी प्रकारसे श्रीमन्नेमिचन्द्रसूरि महाराज–सं. ११४१ में अपने बनाए हुए महावीरचरियनामकग्रन्थमें इसी विषयको पुष्ट करनेवाली सिद्धान्तकी गाथा लिखते हैं—

" न्हाणविलेवणवरवासकुसुमधूवक्खएहिं वत्थेहिं ।
रयणकणगाइएहिं, करेइ पूयं जिणिंदाणं ४४५ "

भावार्थ—स्नान–विलेपन–प्रधानवास–पुष्प–धूप–अक्षत–वस्त्रों करके और रत्न सोना आदि करके जिनेंद्रभगवान्की पूजा करें ॥ ४४५ ॥

इससे साबित हुआ कि ' देवद्रव्य ' यह एक प्राचीन शास्त्रोक्त कथन है.

तटस्थ—आहा ! आपने बहुत अच्छे अच्छे प्रमाण देकर देवद्रव्यकी सिद्धि करनेमें किसी बातकी भी कसर नहीं रक्खी है तथाऽपि ' अधिकस्याऽधिकं फलम् ' इस नियमको स्वीकार करके फिर प्रश्न करताहूं कि श्रीहरिभद्रसूरि महाराजने पञ्चाशकके सिवाय और-भी किसी पुस्तकमें इस विषयका वर्णन किया है क्या ? जो हो तो फरमाइये.

समालोचक—हां बेशक पञ्चाशकके सिवायभी अनेकग्रन्थोंमें उल्लेख आताहै.

देखिये ! संबोधप्रकरणके अन्दर—

"पवरगुणहरिसजणयं, पहाणपुरिसेहिं जं तयाइण्णं ।
एगाणेगेहिं कयं, धीरा तं विंति जिणदव्वं ॥ ९५ ॥
जिणपवयणवुड्ढिकरं, पभावगं नाणदंसणगुणाणं ।
जिणधणमुविक्खमाणो, दुल्लहवोहिं कुणइ जीवो ॥९९॥
जिणपवयणवुड्ढिकरं, पभावगं नाणदंसणगुणाणं ।
दोहंतो जिणदव्वं, दोहिच्चं दुग्गयं लहइ ॥ १०१ ॥"

भावार्थ—उत्तम गुण और हर्षका जनक (पैदा करनेवाला) और प्रधानपुरुषोंका आचरण किया हुआ एक अथवा अनेक पुरुषों करके मंदिरमें एकत्रित किये हुए द्रव्यको धीरपुरुष देव-द्रव्य कहतेहै ॥ ९५ ॥ जिनप्रवचनकी वृद्धि करने वाले और ज्ञान दर्शन गुणोंके प्रभावक ऐसे देवद्रव्यकी उपेक्षा करता हुवा जीव दुर्लभवोधिपनेको प्राप्त होताहै । ९९ ।

जिनप्रवचनकी वृद्धि करने वाले और ज्ञानदर्शनगुणोंके प्रकाशक ऐसे जिनद्रव्यसे व्याजवट्टेद्वारा लाभ स्वयं खानेवाला जीव दौर्भाग्य और दरिद्रावस्थाको प्राप्त करता है ॥ १०१ ॥

तटस्थ—बस बस, अब बन्द कर दीजिए-श्रीहरिभद्रसूरि-

महाराजके रचे हुए ग्रन्थोंके प्रमाणसे तो हमको पूरा निश्चय हो-गयाहै कि-देवद्रव्य आगमसिद्धहै-और ऐसे ऐसे अनेकग्रन्थोंमें अन्य भी होंगे परन्तु अवतो श्रीमहावीरप्रभुके कथित और उनके शिष्य आचार्योंके निर्मित पुस्तकका कोइभी प्रमाण दीजिए जिससे तमाम जैनसमाजको मालूमहो कि बेचरदास बड़ा झूठा आदमी है, और उसके भाषणको छपाकर घरघरमें बांटनेवाले देवद्रव्यसे अपने पापी पेटको भरनेकी इच्छा रखते हैं । अथवा तो नरकगति-में जानेके लिये कोई साथी बनाना चाहते हैं परन्तु जिसका कलेजा ठिकाने पर नहीं होगा वही उनकी बातको मान सकता है नहीं तो तुरत विचार करें कि-एक आदमीके धर्मविरुद्ध दिये हुए भाषणको यह अपने पैसेसे छपाकर प्रसिद्ध करताहै इसमें कुछ हेतु चाहिये, अन्यथा वड़े बड़े प्रभावक आचार्योंके बचनोंसे और आगमों-से विरुद्ध भाषणको कैसे छपाकर प्रसिद्ध करता । अस्तु, अब आप मेरे मनोरथको पूर्ण करें ।

समालोचक—देखिये ! परमकृपालु शासननायक भगवान् महावीरस्वामीसे श्रवण करके पवित्र आचार्य महाराज द्वारा निर्मित वसुदेवहिण्डके प्रथमखंडमें देवद्रव्यके विषयमें नीचे मुजब पाठ आता है—

' जेण चेइयदव्वं विणासियं तेण जिणबिंवपूजादंसणाणं-दितहिययाणं भवसिद्धिआणं सम्मदंसणसुअओहिमणपज्जव-

केवलनाणनिव्वाणलाभा पडिसिद्धा ॥ जा य तप्पभवा सुरमाणुसरिद्धि जा य महिमागमस्स साहुजणाओ धम्मोवएसो वि तस्सणुसज्जणाय सावि पडिसिद्धा। तओ दीहकालठितिअं दंसणमोहणिज्जं कम्मं निबन्धइ असायवेयणिज्जं च ' ॥

भावार्थ—जिसने चैत्यद्रव्य (देवद्रव्य) का नाश किया उसने जिन प्रातमाकी पूजा और दर्शनसे आनन्दित होनेवाले भव्यजीवोंके सम्यक्दर्शन श्रुत, अवधि, मनःपर्यव और केवलज्ञान तथा मोक्षके लाभोंका प्रतिषेध किया है इतनाही नहीं वल्कि उस देवद्रव्यसे होनेवाली देवमनुष्यकी ऋद्धि—आगमोंकी महिमा साधुओंसे होते हुए धर्मोपदेशका लाभ और उसका प्रवर्तन इन सब गुणोंका भी निषेध किया समझना चाहिये। इस लिये चैत्यद्रव्य (देवद्रव्य) का नाश करनेवाले—दीर्घकालकी स्थितिवाले दर्शनमोहनीय और अशातावेदनीयकर्मको बांधते हैं।

पाठकजनो ! मेरेको वड़ा अफसोस होता है कि—मिथ्यात्वमदिराके पानसे पूर्वोक्त ऐसे ऐसे शास्त्रकर्त्ताओंके अभिप्रायको वगैरही समझे वेचरदासने जैसे कोई पागलमनुष्य ज्यों मनमें आए त्यों वकवाद कर वैठता है वैसाही किया है पागलके वकवादसे पागलको विशेषहानि नहीं है परन्तु अनेक शास्त्रोंके अवलोकन करे वगैर वेचरदासने जो वकवाद किया है उससे उसको

इतनी हानि होगी कि अनन्त भवों तक नरक निगोदमें रुलनापड़ेगा। इस लिये अब भी मैं **बेचरदास**को हितबोध करता हूं कि किसी गीतार्थगुरुसे इस बातका प्रायश्चित्त लेकर अपनी आत्माका कल्याण करो। और भवभ्रमणके भयसे डरो। तथा अपनी मनः कल्पना को दूर करो ।

तटस्थ—आ हा हा ! आपने तो मामला आखिर तक पहुंचादिया। यानि लगभग **श्रीमहावीरप्रभु**के समयमें बने हुए ग्रन्थोंका भी हवाला देकर हमारी तसल्ली करदीकि—' महावीर-प्रभुके समयमें भी देवद्रव्यसूचक ग्रन्थ मौजूद थे ' मैं आपका बड़ा भारी उपकृत्यहूं। अब आप कृपाकरके देवद्रव्यको पञ्चाङ्गीसे साबित करदेंकि जिससे फिर किसी तरहकी शंका न रहे। क्योंकि—जब पैंतालीस आगमोंमेंसे किसी भी आगमका प्रमाण देकर देवद्रव्यको साबित करदेंगे तो **बेचरदास**का तो क्या परन्तु उसके पेगंबरकाभी बचन जैनसमाजको मान्य नहीं होसकेगा।

समालोचक—लो ! अब आगमोंके पाठसे दैवद्रव्य सिद्धकर दिखाते हैं।

देखिये ! पैंतालीस आगममें **भत्तपइन्ना** नामका सूत्र है उसके मूलमें वर्णन है कि—

" नियदव्वमउव्वजिणिंदभवणजिणबिंबवरपइट्ठासु ।
विअरइ पसत्थपुत्थयसुतित्थतित्थयरपूआसु ॥३१॥ "

अर्थ—प्रधान जिनमंदिरके बनानेमें (१) जिनेश्वरप्रभुके बिम्बकी प्रतिष्ठामें (२) श्रेष्ठपुस्तकोंको लिखानेमें (३) और सुतीर्थ यानी (४) साधु (५) साध्वी (६) श्रावक (७) श्राविका इन सात क्षेत्र और प्रभुकी पूजामें धर्मिष्ठगृहस्थ अपने द्रव्यको वितरण करताहै (लगाताहै) ॥ ३१ ॥ भत्तपइन्नाके इस मूल पाठसे भी देवद्रव्य सिद्ध हुआ। क्योंकि कोई मनुष्य भगवान्‌की भक्तिके निमित्त घर–गाम–शहर देश आदिको समर्पण करे (इस इरादेसे कि 'मेरेको इस भक्तिका लाभ हो' तो वह देवद्रव्यही कहा जाएगा। क्योंकि उसने देवकी भक्तिके निमित्त वह द्रव्य चढ़ाया है।

देखिये! इसी तरह श्रीरायपसेणी सूत्रमें भी सूर्याभदेवताके अधिकारमें पाठ आता है—

'तएणं से सूरियाभे देवे चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं जाव अन्नेहिय बहूहिं सूरियाभविमाणवासिहिं देवेहिं देवीहिय सद्धिं संपरिवुडे सव्वड्ढिए जाव वाइयरवेणं जेणेव सिद्धायथणे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता सिद्धायथणस्स पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं अणुपविसति अणुपविसित्ता जेणेव देवच्छंदए जेणेव जिणपडिमाओ तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता जिणपडिमाणं आलोए पणामं करेति करित्ता लोमहत्थगं गिण्हइ, जिणपडिमाणं लोमहत्थएणं पमज्जइ, पमज्जित्ता जिणपडिमाओ सुरभिणा

गंधोदएणं न्हाणेति न्हाणेत्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं गायाणं अणुलिंपइ जिणपडिमाणं अहयाइं देवदूसजुयलाइं नियंसेइ पुप्फारुहणं मल्लारुहणं, गन्धारुहणं वण्णारुहणं चुण्णारुहणं वत्थारुहणं आभरणारुहणं करेइ करित्ता आसत्ता सत्ता विउ-लवट्टवग्घारियमल्लदामकलावं करेइ करग्गहगहित्तकरयल-प्पभट्ठविप्पमुक्केणं दसद्धवन्नेणं कुसुमेणं मुक्कपुप्फपुंजोवयार-कलियं करेइ करित्ता जिणपडिमाणं पुरतो अच्छेहिं सेएहिं र-ययामएहिं अच्छरसतंडुलेहिं अट्ठट्ठ मंगले आलिहइ तंजहा सोत्थिय जाव दप्पणा ८ तयाणंतरं च णं चंदप्पहरयणविमल-दंडं कंचणमाणिरयणभत्तिचित्तं कालागरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्क-डज्झंतधूवमघमघंतगंधूत्तमाण चिट्ठंति धूववुट्ठि विणिमुयंतं वेरोलिय मयं कडुच्छयं परिग्गहिय पयत्तेणं धूवं दाउणंजिण वराणं' इत्यादि पाठ है ।

भावार्थ—उसवक्त वह सूर्याभदेवता चारहजार सामानिक-देवता तथा दूसरे अनेक सूर्याभविमानवासि देव देविओंकरके परिवृत हुआहुआ सब ऋद्धिके साथ यावत् वादित्रके शब्द करके जहां पर सिद्धायतन है वहां पर आया, और पूर्वके दरवाजेसे प्रवेश किया ॥ और जहां देवछंदा तथा प्रभुप्रतिमाथी वहां पर आया, भगवान्‌के दर्शन होनेके साथही दोनो हाथ जोड़कर प्रणामकिया, और मयूर-पिच्छीसे प्रभुप्रतिमाका प्रमार्जन किया, इसके बाद सुगंधी जलसे

प्रभुको स्नान कराया, वादमें गोशीर्षचन्दनसे गात्र विलेपन किया, प्रभुप्रतिमापर दिव्यवस्त्र स्थापन किए, पुष्प चढ़ाये. मालाएं चढ़ाई, सुगंधारोहण चूर्णारोहण और वस्त्रारोहण किया (वस्त्र चढ़ाए) आभरणारोहण किया (गहने चढ़ाये) इत्यादि बहुत विस्तारसे सूर्याभदेवताने पूजा की। और पूजाके वाद चांदीके अक्षतसे अष्ट-मंगल आलेखे हैं। अव पाठकवर्ग विचार करेंकि प्रभुको चढ़ाये हुए गहने और चांदीके अक्षतसे किये हुए अष्टमंगल, यह देवद्रव्य हुआकि नहीं? अवश्य मानना पड़ेगाकि हां, वेशक यह देवद्रव्य कहा जायगा। इसी तरह श्रीव्यवहारभाष्यमें लिखा है कि—

" चेइयदव्वं विभयाकरेज्ज केई नरा सयट्ठाए।
समणं वा सोवहियं, वक्केज्जा संजयट्ठाए ? "

व्याख्या—चैत्यद्रव्यं चौराः समुदायेनाऽपहृत्य तन्मध्ये कश्चिन्नर आत्मीयेन भागेन स्वयमात्मनोऽर्थाय मोदकादि कुर्यात्। कृत्वा च संयतानां दद्यात्। यो वा संयतार्थाय श्रमणं सोपधिकं विक्रीणीयात्, विक्रीत्य च तत् प्रासुकं संयतादिभ्यो दद्यात्।

" एयारिसम्मि दव्वे, समणाणं किं नु कप्पई घेत्तुं।
चेइयदव्वेण कयं, मुल्लेण वि जेसु विहियाणं॥
तेण पडिच्छा लोए, विगरहियाविंत्तरे किमंग पुण।
चेइयजइपडिणीए, जो गिण्हइ सो वि हु तहेव॥"

व्याख्या—एतादृशेन द्रव्येण गाथायां सप्तमी तृतीयार्थे यत् आत्मार्थं तत् श्रमणानां किन्तु गृहीतुं कल्पने ?

सूरिराह—यच्चैत्यद्रव्येण यच्च वा सुविहितानां मूल्येनाऽऽत्माऽर्थं कृतं तद्दीयमानं न कल्पते। किं कारणमिति चेदुच्यते—स्तेनानीतस्य प्रतीच्छा प्रतिग्रहणं लोकेऽपि गर्हिता किमङ्ग पुनरुत्तरे तत्र सुतरां गर्हिता यतश्चैत्ययतिप्रत्यनीके चैत्ययतिप्रत्यनीकस्य हस्ताद्यो गृह्णीयात् सोऽपि हु निश्चितं तथैव चैत्यप्रत्यनीका एव ॥ इत्यादि ॥

भावार्थ—शिष्य प्रश्न करता है कि—चौरोंका समुदाय चैत्यद्रव्यको हरणकरके लेगया उनमेंसे कोई मनुष्य अपना भागलेकर उससे लड्डु वगैरा वनाकर साधुओंको देवे और किसी चौरने उपधिसहित साधुको वेचकरके उत्पन्न किए धनमेंसे रसोई बनाईहै उसमेंसे प्रासुक आहार साधुको दे तो क्या वह आहार साधुको कल्पे ?

आचार्य महाराज जवाव देते हैं कि—वह आहार साधुको न कल्पे क्योंकि—यतियोंके शत्रु और चैत्यके शत्रुके पाससे आहार लेनेवाला भी यति और चैत्यका प्रत्यनीक (वैरी) ही कहा जाताहै और ऐसे आहारके ग्रहणकरनेसे लोकोंमें भी निंद्य (निन्दाका पात्र) वनताहै देखिये ! ऐसे ऐसे अनेक सूत्रके पाठ होने परभी धिठाई करके वेचरदासने कह दिया कि—'देवद्रव्य जैन आगममें नहीं है' यह कितनी वडी भारी भूल की है आगमशास्त्रके ज्ञान वगैर वेचरदासने सभामें खडे होकर यह कथन करते वक्त शायद ऐसा

4

मानलिया होगाकि—दुनिया सारी मूर्खहै मैं ही अक्लमंद हूं। परन्तु उसका यह मानना उसकीही मूर्खताको सिद्ध करता है। बेचरदास-के देवद्रव्यसे विरुद्ध दिये हुए भाषणने व्यवहारभाष्यके इस पाठको सार्थक किया है। यानि चैत्यप्रत्यनीक, यतिप्रत्यनीक और लोकनिन्द्य यह तीनो टाइटल आगमसिद्ध देवद्रव्यके निषेध करनेसे बेचरदासने प्राप्त किये हैं, देखिये मात्र देवद्रव्यके निषेध करनेसे बेचरदासको आस्तिक लोकोंकी तरफसे तीन टाइटल मिले अगर कोई जैनमुनि या कोई जैनश्रावक उस देवद्रव्यको खाजाय तो उसकी क्या दशा हो वह इसी द्रष्टांतसे पाठकजन स्वयं विचार करलें।

तटस्थ—आप के दिये हुए **भत्तपइन्ना** प्रकरणके मूल पाठके प्रमाणसे तथा व्यवहारवृत्ति और पूर्वधर **जिनभद्रगणिक्षमाश्रमण** कृत **व्यवहारभाष्यके** प्रमाणसे तथा **रायपसेणीसूत्रके** मूलपाठके प्रमाणसे मुझे यह पूर्ण निश्चय होगयाहै कि देवद्रव्य सिद्धान्तसम्मत द्रव्य है। और गप्पी **बेचरदासका** यह कहनाकि ‘ मूल आगमोंमें देवद्रव्य नहीं है ’. केवल कपोलकल्पित है। इस लिये आपके दिये हुवे इतने पाठोंसे मेरी तो तसल्ली (दृढता) हो गई है परन्तु कितनेक ऐसे हठी होते है कि एक तरफसे समाधान मिलने पर दूसरी तरफ दौड़ जाते है। जब पैंतालीस आगमोंमेंसे उपाङ्ग-पयन्नाआदिका प्रमाण दिया जाता है तब कहदेते है कि ‘ हम ग्यारह अङ्गको मानते हैं ’ जब अङ्गका प्रमाण देते हैं तब उपाङ्गमें

घुम जाते हैं. मतलब उसके निषेध की हुई बातकी विधि जिस आगम शास्त्रमें आतीहो उसी शास्त्रसे किनाराकसी करते हैं और *यत्र वैयाकरणास्तत्र नैयायिकाः यत्र नैयायिकास्तत्र वैयाकरणा, यत्र नोभयें तत्र चोभये यत्र चोभये तत्र नोभये' इस कहावतको चरितार्थ करते हैं। जैसे थोड़े ही दिन पेश्तर भावनगर जैनधर्मप्रसारक सभामें बेचरदासने अपने किये हुए गुनाहको नहीं स्वीकार करनेके लिये कहा था कि 'मै ग्यारह अङ्गको मानता हूं'। इस लिये आप कृपा करके ग्यारह अङ्गके अंदरसे किसी एकाद अङ्गसे भी देवद्रव्यको सावित कर देवें कि जिससे नास्तिकोंका मुंह बंद होजाए।

समालोचक—देखिये ग्यारह अङ्गमेंसे श्रीज्ञातासूत्रनामके छट्ठे अङ्गके सोलहवें अध्ययनमें श्रीमती सती द्रौपदीजीके अधिकारमें लिखाहै कि—

"तएणं सा दोवई रायवरकन्ना जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता मज्जणघरमणुप्पविसइ अणुप्पवि-

* इसका यह मतलव हैकि धूर्त्तजन जहा वैयाकरण यानि व्याकरणके जाननेवाले हो वहाँ पर हम नैयायिक है ऐसा कह देते हैं। और जहां नैयायिक होवे वहाँ पर हम व्याकरणके वेत्ता हैं ऐसा जाहेर करते है। और जहाँ दोनो विषयके अनभिज्ञ होवे वहां पर हम दोनों विषयके विज्ञ हैं ऐसा बतलाते हैं, और जहां पर दोनों विषयके वेत्ता विद्यमान हो वहां पर उन्हें हारकर कहना पडता हैकि वावा हम कुछभी नहीं जानते।

सित्ता न्हाया कयवलिकम्मा कयकोउयमंगलपायच्छित्ता सुद्ध-पावेसाइं वत्थाइं परिहियाइं मज्जणघराउ पडिणिक्खमइ पडिणि-क्खमित्तां जेणेव जिणघरे तेणेव उवागच्छति उवागच्छित्ता जिणघरमणुपविसइ अणुपविसित्ता जिणपडिमाणं आलोए पणामं करेइ करित्ता लोमहत्थगं पमज्जइ एवं जहा सूरियाभो जिणपडिमाओ अच्चेइ तहेव भाणियव्वं जाव धूवं डहइ' ॥ इत्यादि ॥

सारांश—उसवक्त वह राजवरकन्या द्रौपदी जहां मज्जनघर (स्नानघर) है वहां आई और स्नानघरमें प्रवेशकिया. स्नान किया. स्नानकरके धरमंदिरकी पूजाकी (द्रौपदीके इस अधि-कारसे ' ग्रामके बाहर ही मन्दिर थे ' वेचरदासका यह कहना सर्वथा मिथ्या सिद्ध होता है) बादमें अपमंगल और दुःस्वप्नकी घातक कितनीक क्रियायें करके जिनघरमें आई । और वहां आकर मयूरपिच्छीसे मूर्तिकी पडिलेहणाकरके सूर्याभदेवताकी तरह पूजा की. यहां ' सूर्याभदेवताकी तरह ' इसका यह मतलब है कि—सूर्याभदेवने जैसे प्रभुको वस्त्र आभूषण वगैरे चढाये इसी तरह द्रौपदीनेभी चढाये अर्थात् सब क्रियाका अनुकरण किया । इस पाठकी टीकामें नवाङ्गी टीकाकार श्री अभयदेवसूरि महाराज लिखते हैं कि—' गंधानां चूर्णानां वस्त्राणामाभरणानां चारोपणं करोति स्म ' अर्थात् द्रौपदीने गंधचूर्ण वस्त्र और आभूषणोंका आरोपण किया.

देखिये ! छट्ठे अङ्गके इस मूलपाठसें भी देवद्रव्य सिद्ध हुआ। क्योंकि जो गहने आदि चढ़ाये गये उसे देवद्रव्यही कह सकते हैं.

तटस्थ—आपने छट्ठे अङ्गके मूलपाठसे देवद्रव्यको सिद्ध कर मेरे पर बड़ी भारी कृपा की है. मैं नहीं जानता कि—बेचर-दासको क्या होगया है जोकि ऐसे ऐसे स्पष्ट पाठोंके होने पर भी जिसने देवद्रव्यके विषयमें अगड़ बगड़ उत्पटाङ्ग भाषण देदिया

हां मालूम हुआ कि—इसके नसिबमें अनन्तकालतक संसा-रमें भटकर कर मरनेका ही होगा अन्यथा सूत्रविरुद्ध प्ररूपणा कदापि नहीं करता अस्तु, कृपाकरके पैंतालिस आगमोंमेंसे और भी प्रमाण सुनावें जिससे नास्तिकोंके संसर्गसे बिगड़ी हुई लोकों-की श्रद्धा शुद्ध हो और आगे कभी ऐसे नास्तिकोंके जालमें न फसें।

समालोचक—अच्छा देखिए ! बावीस हजारे आवश्यकके सामायिकाध्ययनमें (पत्र ३६८ वें में) इसी विषयकी सिद्धि करनेवाला पाठ मिलता है—

तथाहि—' सो य सेणियस्स सोवण्णियाण जवाणमट्ठ-सतं करेइ, चेइयच्चणियाए परिवाडिए सेणिओ कारेइ तिसंझं '

भावार्थ—वह सोनार श्रेणिक महाराजके लिये सोनेके १०८ जव करता है, जिनेश्वर प्रभुकी पूजाके लिये श्रेणिक महाराज प्रातःकाल दुपहर और सन्ध्याको क्रमसे कराते हैं।

मतलब यह है कि चैत्य (प्रभुमूर्ति) कीं अग्रपूजाके लिये श्रेणिक महाराज हमेशां तीनों संध्यामें १०८ स्वर्णजवके साथिये करते थे. अब विचार करो कि हमेशा इतने सुवर्णका लाभ जिस मंदिरमें होताथा क्या उस मंदिरमें देवद्रव्य जमा नहीं हो कोई बुद्धिमान मान सकता है ? देखिये ! इसी विषयका पाठ पूर्वधर कृतआवश्यकचूर्णिके प्रथम सामायिकाध्ययनमें भी आता है ।

तथा च तत्पाठः—"सो य सेणियस्स अट्ठसतं सोवण्णियाण जवाण करेइ अच्चणिता निमित्तं तं परिवाड़िए सेणिओ कारेइ तिसंझं" इस पाठका अर्थ ऊपर मुजब है ॥ इसी तरह श्री जीवाभिगमसूत्रमें विजयपोलियाके अधिकारमें (छापा पृ० ६०९, में) लिखा है कि—

'से विजए देवे चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं जाव अन्नेहिय बहुहिं वाणमंतरेहिं देवेहि देवीहि य सद्धिं संपरिवुडे सव्वड्ढीए सव्वजुइए निग्घोसणाइयरवेणं जेणेव सिद्धाययणे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता सिद्धाययणमणुप्पयाहिणी करेमाणे पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं अणुप्पविसइ अणुपप्पविसित्ता जेणेव देवच्छन्दए तेणेव उवागच्छति उवागच्छित्ता आलोए जिणपड़िमाणं पणामं करेइ, पणामं करित्ता लोमहत्थगं गिण्हइ, गिण्हित्ता जिणपड़िमाओ लोमहत्थएणं पमज्जति, लोमहत्थएणं पमज्जित्ता सुरभिणा गंधोदएणं न्हाणेइ, सुरभिणा गंधोदएणं

न्हाणित्ता दिव्वाए सुरभिए गंधकासाइए गात्ताइं लुहेति गात्ताइं अणुलिंपइ अणुलिंपित्ता जिणपडिमाणं अहयाइं सेताइं दिव्वाइं देवदूसजुअलाइं नियंसेइ, नियंसित्ता अग्गेहिं वरेहिं मल्लेहि य अच्चेइ, अच्चित्ता पुप्फारुहणं गंधारुहणं आभरणारुहणं करेइ ;"

सारांश—वह विजय देवता चार हजार सामानिक देवता तथा अनेक वाणमन्तर देवदेवियोंकी साथ परिवृत हुआ हुआ सब ऋद्ध्यादिकी साथ जहां सिद्धायतन था वहां आया और उस सिद्धायतनको प्रदक्षिणा देकर पूर्व दिशाके दरवाजेसे प्रवेश करके जहां देवछंदा थां वहां आया फिर जिनप्रतिमाके दर्शन होतेके साथ प्रणाम किया. और मयुरपिच्छी लेकर प्रतिमाका प्रमार्जन किया, इसके बाद सुगन्धितजलसे स्नान कराया. फिर दिव्य सुगन्धित वस्त्रसे अङ्गलुंछन किया. बादमें गोशीर्षचन्दनादि करके प्रभुको विलेपन किया. तदनन्तर देवदूष्ययुगल चढ़ाया. और श्रेष्ठ मालाओंसे अर्चन किया. बादमें पुष्पारोहण गंधारोहण और आभूषणारोहण किया. यानि पुष्पवासक्षेप–गहना वगैरे चढ़ाये। देखिये ! ऐसे ऐसे पाठोंके होने पर कौन कह सकता है कि–'देवद्रव्य आगमविहित नहीं है'—तथा निशीथचूर्णिमें भी सोलहवें उद्देसेमें प्राचीन देवद्रव्यको सिद्ध करने वाला पाठ नीचे मुजब है. तद्यथा—

" चेइयाणं वा तद्दव्वविणासे वा संजईकारणे वा अन्नंमि वा कंमिय कज्जे रायाहीणे सो य राया तं कज्जं न करेइ सयं वुग्गाहिओ वा तस्साउंटणानिमित्तं दगतीरे आयाविज्जा तं च दगतीरं तस्स रण्णो ओलोयणे ठियं "

भावार्थ— चैत्यका या चैत्यद्रव्य–देवद्रव्यका विनास होता तथा साध्वीपर बलात्कार होता हो अथवा और कोई राज्याधीन कार्य हो उस कार्यको राजा व्युद्ग्राहित (किसीका भरमाया हुआ) या स्वयं न करता होवे तो उसको वश करनेके लिये जलाश्रयकी पास जाकर साधु आतापना करे और वह जलाश्रय राजाकी नजरमें हो। इत्यादि पाठ अन्य आगमोंमें भी हैं. अगर उन सब पाठोंका यहां पर उल्लेख करें तो एक बड़ी भारी पुस्तक बनजाय. परन्तु अवकाशके अभावसे और अकलमंदको इशारा ही काफी है इस ख्यालसे नहीं लिखे जाते।

तटस्थ—महाराज! अब देवद्रव्यको सिद्ध करनेके लिये पाठोंकी जरूरत नहीं है क्यों कि आपने पाठोंके सुनानेमें कुछ कसर नहीं रक्खी है. अब आगेका खण्डन कीजिये।

वेचरदास–" आ कारणथी मने जिज्ञासा उत्पन्न थई अने मूल जैन आगमोमां आ देवद्रव्य शब्द छे के केम ते तपासवानो मैं निश्चय कर्यो जैनशास्त्रो (मूल) नी वारीक तपास पछी मने जणायुं के आ देवद्रव्यशब्दनो प्रयोग मूलमां कोईज ठेकाणे नथी '–

समालोचक—वेचरदासके उपरके कथनका खण्डन प्रथमके कथनके खण्डनमें अनेक आगमोंके पञ्चाङ्गी प्रमाणसे किया गया है यानी मूलपाठसे भी देवद्रव्यको सिद्ध किया हैं उससे तथा वीतराग-प्रभुके साथ द्रव्यके संवन्धका जो समाधान किया है उससे अच्छी तरहसे हों चुका है.

तटस्थ—हां जी ! हां साधारण खण्डन नहीं किया किन्तु खण्डशः खण्डन हो चुका है। और आपने अच्छी तरह सावित कर दिया है कि वेचरदासने शास्त्रोंका अध्ययन ही नहीं किया। अगर किया होता तो आपने इतने प्रमाण दिये उनमेंसे एक भी इसके देखने में नहीं आया क्या ऐसा वन सकता है ? इससे हम अच्छी तरहसे जान गये हैं कि वेचरदासने आगम वागम कुछ भी नहीं देखे मात्र आगमके नामसे लोगोंको भ्रमणामें डालता है. मैं द्वेष भावसे ऐसा नहीं कहता किन्तु " वीतराग प्रभुका द्रव्य नहीं हो सकता इस लिये मेरेको आगम पढ़नेकीं जिज्ञासा हुई इत्यादि " कथनसे ही उसका मृषावादीपणा और देवद्रव्यकी साथ द्वेषपरायणताका मुझे भान हुवा है इससे कहता हूं, क्यों कि अगर वह भला मनुष्य होता तों शास्त्रवचनसे विरुद्ध होकर सूत्रका अध्ययनही नहीं करता अगर भूलसे कभी कर लिया होता तो सूत्रोंके पठनका हेतु यह वताता कि-सूत्रमें कैसी कैसी वैराग्यकी वातें आती है, भगवान्का कैसा अगाध ज्ञान है। ' सवी जीव करूं शासन रसी,

इसी भाव दया मन उल्लसी ' ऐसे भावदयाके सिन्धु परमकृपालु भगवान महावीर प्रभुके सूत्रोंमें कैसे उद्गार हैं ? इन बातोंको जानने-के लिये सूत्र पढ़नेकी जिज्ञासा हुई परन्तु बेचरदासके कथनसे तो यह साफही सिद्ध होता है कि उसका वांचनेका हेतु मात्र ' देवद्रव्य आगममें है या नहीं ' इतना ही था । क्या बेचरदासके दिये हुए हेतुसे और उसकी की हुई कुतर्कोंसे ही उसकी देवद्रव्य-के साथ द्वेषपरायणता सिद्ध नहीं होती ? अवश्यमेव होती है । इस लिये ' आ करणथी ' ऐसे अक्षरोंसे लेकर ' कोइज ठेकाणे नथी ' इन अक्षरों तकके कथनके खण्डनको छोड़ आगेके विषयका खण्डन कर दिखाइए ।

बेचरदास—' परन्तु आ शब्द तान्त्रिकयुगमां आपणा केटलाक साधुओए दाखिल कीधो छे '

समालोचक—बेचरदास ! तुम्हारी अक्लको क्या हो गया है क्या किसी पोस्तीकी दोस्ती तो नहीं की ? जरा विचार तो कर-नाथा कि तान्त्रिकयुगके असरसे अगर साधुलोग शास्त्रोंमें शब्द दाखिल करते तो मदिरा पान करना मांस खाना मैथुन सेवन करना इत्यादि पांच ' मकार ' के माननेसे मोक्ष होता है ऐसे अक्षर दाखिल करते और जो त्याग है वह सर्व उड़ादेते क्यों कि तान्त्रिक लोकोंका ऐसा ही मानना है । देखिये तान्त्रिकोंने एक श्लोकमें क्या लिखा है ।

" केचिद्वदन्त्यमृतमस्ति पुरे सुराणां,
केचिद्वदन्ति वनिताऽधरपल्लवेषु ।
ब्रूमो वयं सकलशास्त्रविचारदक्षा
जम्बीरनीरपरिपूरितमत्स्यखण्डे ॥ १ ॥

अर्थ—कितनेक कहते है कि देवलोकमें अमृत है, तो कितनेक कहते हैं कि स्त्रीके ओष्ठपल्लवोंमें अमृत है परन्तु सर्वशास्त्रोंके विचारमें निपुण हम (तान्त्रिक लोग) कहते है कि—निम्बुके रससे परिपूरित (भरपूर) मछलीके खण्डमें (मछलीके आचारमें) अमृत रहा है ॥ १ ॥ अव विचार करो ऐसे अधम तान्त्रिकजनोंका असर अपने (जैनके) साधुओं पर होना कैसे माना जावे । हां, यदि अपने ग्रन्थोंमें भी ऐसा विषय आता तो वेचरदासका कहना ठीक था, परन्तु अपने ग्रन्थोंमें तो ऐसे कुकर्म करनेवालोंको अधोगतिकी प्राप्ति लिखी हैं ॥ इस लिये तान्त्रिकयुगका असर जैन साधुओं पर हुआ ऐसा कहना महामृषावाद है । बस सिद्ध हुवा कि—देवद्रव्य शब्दका तान्त्रिकयुगसे कुछ भी संबन्ध नहीं है । क्या कोइभी ऐसे तान्त्रिक ग्रन्थको वेचरदास वता सकता है ? कि जिसमें देवद्रव्यके भक्षणसे घोर नरकगतिकी प्राप्ति लिखी हो, और उसके रक्षणसे स्वर्गादि संपत् प्राप्तिका जिकर होवे, " आ, शब्द तान्त्रिक युगमां आपणा केटलाक साधुओए दाखिल कीधो छे" वस इस कथनसेही वेचरदासको कितना ज्ञान है इस बांतकी कसोटी हो जाती है ।

वेचरदास—' आ शब्दो दाखल करवामां साधुओनो शुं मतलब हशे ते बाबत तपासवानी मने जिज्ञासा थई अने तपास करतां जणायुं के ज्यारे विषमकाल शरू थयो अने आगमोमां साधुओं माटे जे अति उच्च कोटीनो आचार अने त्याग वर्णव्यो हतो ते ज्यारे साधुओ माटे कालस्वभावथी पालवो अशक्य थई पडयो ज्यारे साधुओए उद्यान अने जङ्गलोमांज रही आत्मामां मस्त रहेवानुं मांडी वाल्युं अने तेओ वस्तिमां आववा लाग्या अने आहारादिनी उपाधिने योगे तेओए श्रावकोनें, देवोने आ चढाववुं, आ पहेराववु. आ लटकाववुं. वगैरे मार्गो फक्त पोताना स्वार्थना संतोष माटे उपदेश्या. अने आ उपदेशना समर्थनमां केटलाएक साधुओए आ युगमां एवा संस्कृतग्रन्थो लखी नाख्या छे के जेमां देवद्रव्यने नुकसान करवामां महापाप जणाववामां आव्युं छे ".

समालोचक—पाठकजनों ! अब जरा विचार कर देखिये ! कि वेचरदासने कितनी असत्य बातें कथन की हैं ? काल स्वभावसे साधुओंसे कठिन आचार नहीं पलसका तब शहरमें रहने लगे और आहारादिकी उपाधिके योगसे देवोंको यह चढ़ाना. यह पहिराना. इत्यादि मार्ग अपने स्वार्थके खातिर प्ररूपे हैं—बेचरदास ! तुह्मारी बुद्धि क्या पत्थर हो गई है, जो जराभी विचारको अवकाश नहीं मिलता. अगर साधु लोगोंको अपना स्वार्थही पोषण करना होता तो ' देवद्रव्य खानेमें महा पाप है ' यह वाक्य कैसे लिखते ? क्योंकि स्वयं खानेवाला खानेका निषेध कदापि नहीं करता, परन्तु

अपने जैनग्रन्थोंमें तो देवद्रव्य खानेवालेको अनन्तसंसारी लिखा है,- अगर शिथिल साधुओंने आहारादि उपाधिके लिये ग्रन्थ बनाये होते और उनमें देवद्रव्य शब्द दाखिल किया होता तो साथमें यह भी लिखा होता कि ' साधु देवको चढ़ाया हुवा माल खासकते हैं, पर श्रावक नहीं खासकने ' और देवद्रव्यके मालिक साधुही होतेहैं । परन्तु जैनग्रन्थोंमें ऐसे लेखकी तो गंधभी नहींहै और खानेवालेको अत्यन्त दोषी माना है । इस बातको तुम खुदभी अपने भाषणमें स्वीकार करते हो कि देवद्रव्यका नुकसान करनेसे महापाप होना लिखा है । बेचरदास ! तुमने आपही अपने पांव पर कुल्हाड़े मारने जैसा किया, क्योंकि आहारादिकी उपाधिके लिये देवद्रव्यकी प्रवृत्तिमें शिथिल साधुओंको हेतु मानते हो—और साथही देवद्रव्यके नुकसानसे महापाप होता है ऐसा शिथिलाचारियोंका कथन जाहिर करतेहो जिससे तुह्मारे कथनसे ही तुह्मारा खण्डन हो जाताहै । अगर आहारादिक खानेपीनेके लोभसे जो देवद्रव्यका रिवाज कायम किया होता तो उसके भक्षणका अनन्तसंसारपरिभ्रमणरूप तथा नरक-निगोदके अनन्तदुःखरूप जो फल वर्णन कियाहैं सो कदापि नहीं करते । और फल वर्णन किया है तो फिर खानेके लिये देवद्रव्य-शब्दको शास्त्रमें दाखिल किया ऐसा कैसे सिद्ध हो सकताहै । इससे मालुम होता है कि बेचरदासका कथन पूर्ण मृषावादसे भराहुवा और परस्पर विरुद्धताको धारण करता है । पाठकजनों ! जरा विचार करो कि—क्या ऐसा कभी बन सकता है जो तमाम साधु-

शिथिलाचारी बन जाये ? अगर नहीं तो फिर जिन शिथिलाचारियों-ने ऐसा रिवाज निकाला उसके विरुद्ध शुद्धाचारियोंकी तरफसे उस विषयका खण्डन किसीभी पुस्तकमें लिखा होना चाहिये जैसे कि जिनवल्लभसूरिकृतसंघपट्टकके सातवें काव्यकी टीकामें चैत्यवासिओं-का खण्डन करनेके लिये **जिनपतिसूरि** लिखते हैं कि—' तथा **शङ्काशादिश्रावकाणां चैत्यद्रव्योपभोगिनामत्यन्तदारुणविपा-कस्याऽऽगमेऽपि बहुधा श्रवणात्** '

भावार्थ—शंकाशादि श्रावकोंको देवद्रव्यके भक्षणसे भयङ्कर दुःख सहन करने पड़े। ऐसा आगमोंमें अनेक वार श्रवण करनेसे देवद्रव्यका भक्षण अनन्त दुःखप्रद है इस लिये हे चैत्यवासिओं ? चैत्यद्रव्यसे बने हुवे मंदिरोंमें रहना और देवद्रव्यकी वस्तुको उपभोग-में लेनी छोड़दो। यह तुम्हारा रिवाज ठीक नहीं है, इत्यादि; चैत्यवासिओंका खूब खण्डन किया है। अगर जो देवद्रव्य शास्त्र-सिद्ध न होता तो सङ्घपट्टकमें इस विषयका भी खण्डन करते कि ' हे शिथिलचारी चैत्यवासिओं, यह देवद्रव्य शब्द तुमने अपनी मतिकल्पनासे निकाला है—किसी भी शास्त्रमें नहीं हैं इस नूतनशास्त्र-विरुद्ध कल्पनासे तुम अनन्तसंसारी होजाओगे इत्यादि लिखा होता; परन्तु किसी भी जैनग्रन्थमें ऐसा बर्णन नहीं है। इस लिये **बेचरदास**का यह कहना कि ' देवद्रव्य शिथिलाचारियोंका चलाया हुआ मार्ग है ' महा मृषावाद है. बादमें उसने अपने भाषणमें कहा है कि उन शिथिलाचारियोंने इस विषयके संस्कृतग्रन्थ

बनाये हैं यह भी एक इसका दारुण मृषावाद है. क्योंकि अगर शिथिलाचारि अपने स्वार्थपोषण करनेके लिये ग्रन्थ बनाते तो उसमें विषयोंका हीं महात्म्य गाया जाता। जैसे तान्त्रिकशास्त्रोंमें गाया गया है, और लिखते कि—' साधुओंको घोड़े गाड़ीमें बैठना चाहिये. स्त्रियोंके साथ प्रेमसे हिलमिलकर रहना चाहिये, फल फूल मेवे मिठाई आदि जो कुछ मिले भक्ष्याभक्ष्यका विचार किये वगैर खालेने, चाहिये '—परन्तु ऐसे विषयपोषकवाक्योंकी जैनग्रन्थोंमें गन्धभी नहीं है। अब विचार करना चाहिये कि शिथिलाचारियोंको और कोई विषयपोषकपदार्थका निरूपण करना नहीं सूझा, जो एक देवद्रव्य शब्दको पकड़ लिया। और फिर उसके नुकसानमें पाप बतलाया जिससे स्वार्थ पोषक मनोरथ भी सिद्ध नही हो कसता, बतलाइए अब ऐसे कथन करनेवालेको अक्कका दुश्मन कहना या मूर्खोंका सरदार कहना चाहिये या पशु कहना चाहिये, या धर्मादेका अन्न खाकर धर्मकाही नाश करनेसे धर्म्मद्रोही कहना चाहिये? जिसने यह भी नहीं विचार किया कि अगर प्राचीन मुनियोंको शास्त्रविरुद्ध बातें अपने शिथिलाचारको चलानेके लिये निकालनीही थी तो फिर मूल आगमोंमें स्थान स्थान पर ऐसे ही विचारके पाठ डालनेमें उन्हें क्या आलस थी. जो ऐसा नहीं किया। इससे साबित होता है कि कर्मसंयोगसे कितनेक प्राचीनमुनि शिथिल हो गये थे और वे चैत्यवासी कहलाते थे तथापि श्रद्धासे भ्रष्ट नहीं होनेसे उन्होंने आगमविरुद्ध शास्त्र नहीं रचे और आगम पाठ नहीं बिगाड़े।

इस लिये देवद्रव्यविषयके पोषक जितने शास्त्र हैं वे सब आगम अनुसार हैं तथा **बेचरदास**का यह कहना कि 'साधुओं प्रथम जङ्गलमें ही रहते थे' निरी गप्प है क्योंकि साधुओंके लिये शहरमें रहनेका निषेध किसीभी आगमप्रमाणसे सिद्ध नहीं होता। शायद **बेचरदास**ने गप्प मारनेकाही ठेका ले रक्खा होगा। हां बेशक जिनकल्पी या कितनेक स्थिविरकल्पी जंगलोंमें रहते थे. परन्तु सब साधु जंगलमें नहीं रहतेथे, इस लिये **बेचरदास**का 'साधुओ जंगल-मांज़ रही' इत्यादि कहना कपोलकल्पित है। अगर नहीं तो किसी सूत्रका पाठहो तो बताएकि जिसमें साधुओंको शहरमें रहनेकी मनाई की है।

तटस्थ—अजी! आपके कहनेसे यह तो जान लिया कि सूत्र ग्रन्थमें शहरमें रहनेका निषेध नहीं होगा. परन्तु कहीं विधि है (रहने का जिकर है) क्या? जब तक आप शहरमें रहनेकी विधिको आगम प्रमाणसें साबित नही करेंगे वहांतक भोले भद्रिक लोगोंकी समजमें बात नहीं आ सकेगी इस लिये कृपाकर साधुओंको शहरमें रहनेकी विधि बतलाइए जिससे **बेचरदास**का वह भाषण कि 'साधु लोग गाममें रहने लगे तब देवद्रव्यकी रूढि शुरू हुई;' झूठा साबित हो जाय।

समालोचक—देखिए–पैंतालिस आगममें **श्रीनिशीथसूत्र** भी है उसकी चूर्णिके दूसरे उद्देसेमें लिखा है कि–" **गामाणुगामं**

दुइज्जमाणा वेयाले गामं पत्ता, जइ य वसही न लभति ताहे बाहिं वसंतु, मा अदत्तं गिह्लंतु " इत्यादि ।

भावार्थ—ग्रामानुग्राम विहार करते हुए साधु लोक सन्ध्यासमय गामको प्राप्त हुवे होवे और उस गाममें वसति (मकान) न मिले तो बहार रहें परन्तु बगैर दिये हुवे मकानमें न रहें ' देखिये इसनिशीथचूर्णिके पाठसे कैसा साफ सिद्ध होगया है कि—साधुओंको वसति न मिले तो बहार रहें. अब ' साधुओए जंगलों-मांज रही ' इत्यादि बेचरदासका कथन कितनी असत्यतासे भरा हुआ है, वो पाठकजन स्वयं विचार कर लेवें । देखिये इसी ग्रन्थके इसी उद्देसमें लिखा हुवा है कि—

' **थले देउलिया गाहा, एगो गामो तस्स य मज्झे थलं तम्मि य थले गामेण मिलितु देउलं कतं तत्थ साहु ठिता** ' इत्यादि ।

अर्थ—एक गामके मध्यमें स्थल है उस स्थलमें गामके लोगोंने मिलके एक देवल बन्धाया, उसमें साधु रहे । इस पाठसे भी गाममें रहना स्पष्ट सिद्ध होता है फिरभी इसी उद्देसमें—' **सव्वो पावरण-गाहा, एगम्मि नगरे सेट्ठिघरे एगानिवेसणे पंचसयगच्छो वासासु ठितो** ' इत्यादि । अर्थ—एक नगरमें एक सेठके घरमें पांचसौ साधु चौमासा रहे । देखिये इससे भी साधुओंका नगरमें रहना सिद्ध होता है, ऐसे निशीथसूत्रमें अनेक स्थलोंपर पाठ आते हैं और देखिये व्यवहारभाष्यके पत्र ४८६ में लिखा है कि—

' डहरगाममयम्मि, न करेंति जा न निण्णियं होति ।
पुर गामे व महंते, वाडव साहिं परिहरन्ति ' ॥

व्याख्या—डहरके-क्षुल्लकग्रामे कोऽपि मृतस्तस्मिन्मृते तावत् स्वाध्यायो न क्रियते यावत्तत् कलेवरं न निष्कासितं भवति । पुरे पत्तने महति वा ग्रामे वाटके साहौ वा यदि मृतः तदा तं पाटकं साहिं वा परिहरन्ति, किमुक्तं भवति ? वाटकात् साहितोऽन्यत्र मृते नाऽस्वाध्यायः ' इत्यादि ।

भावार्थ—छोटे गाममें कोई मरण हो तो जबतक उस शब (मुर्दे) को न निकाले तबतक साधुलोग स्वाध्याय न करें । और बड़े शहरमें या बड़े गाममें रहते हों तो जिस मोहलेमें या गलीमें वसते हों उसमें अगर मृतकका कलेवर हो तो स्वाध्याय न करें । और उससे दूर हों तो करें । बतलाइए अगर साधु जंगलमें ही रहते हों तो इस विषयके जिकरकी क्या जरूरत थी. क्या जंगलोंमेंभी कूचा, मोहला होता है ? कदापि नहीं । इससे भी बेचरदासका यह कथन कि ' जंगलोंमांज रही ' असत्य ठहरता है । और इस वाक्यके असत्य हो जानेसे सारे भाषणका सारांश उड़ जाता है । क्योंकि भाषणका मतलब देवद्रव्यको उड़ा देनेका है, और देवद्रव्यको उड़ानेके लिये ही यह दलील पेश की है कि ' साधुओंके गाममें रहनेसे यह प्रथा शुरू हुई '—अब साधु लोगोंका तो आगमप्रमाणसे हमेशा गाममें रहना सिद्ध हुवा । बस इससे देवद्रव्यभी हमेशासे

होना मिद्ध हुआ। तब बेचरदासका भाषण देवद्रव्यके उड़ानेमें ऐसा निष्फल हुआकि जैसे नपुंसक पुत्रप्रसवकी इच्छामें हतोत्साह बनता है। व्यवहारभाष्यमें लिखा है कि—

'**पुप्फावकिण्णमंडलियाव्रलियाउवस्सया भवे तिविहा**'। इत्यादि ॥

व्याख्या—क्वचिद् ग्रामे नगरे वा साधवः पृथगुपाश्रये स्थिताः ते च उपाश्रयास्त्रिविधा भवेयुः—

पुष्पावकीर्णका मण्डलिकाबद्धा आवलिकास्थिताः। इत्यादि।

भावार्थ—उपाश्रय तीन प्रकारके होते हैं, पुष्पावकीर्ण, माण्डलिक और आवलिकाबद्ध। किसी गाम या नगरमें साधु लोग किसी जुदेजुदे उपाश्रयमें ठहरे हों × × × × × इस विषयका बड़ा पाठ है। इससें भी साधुओंका शहरमें रहना साबित होता है।

तटस्थ—आ! हा! हा! आपने बहुत प्राचीन सूत्र ग्रन्थोंके पाठ दिये जिनसे साफ सिद्ध होगया कि—बेचरदासके वाक्य असत्यतासे कूट कूट कर भरे हुए हैं। इसलिये सर्वथा अनुपादेय हैं। तथा अपनेको नो पञ्चांङ्गी सर्वप्रकारसे मान्य है। क्योंकि आपने व्यवहारभाष्यकी गाथा लिखी सो पूर्वधर कृत है तथा **निशीथचूर्णिका** प्रमाण दिया सो पूर्वधरमहत्तर **जिनदासगणि** कृत हैं। अतः सकल-श्वेताम्बरोंको मान्य है। परन्तु बेचरदासजैसे दुराग्रहियोंकी तरफसे प्रायः यह प्रश्न उपस्थित होगा कि 'साधुको नगरमें रहनेका पाठ मूलमें बतलाइए।

समालोचक—लीजिए मूलपाठका प्रमाण दिया जाता है. बृहत्कल्पके पहले उद्देसेमें लिखा है कि—

" न कप्पइ निग्गंथाणं आवणगिहंसि वा रत्थामुहंसि वा संघाडगंसि वा तियंसि वा चउक्कंसि वा चच्चरंसि वा अंतरावणंसि वा वत्थए ॥ १२ ॥ कप्पइ निग्गंथाणं आवणगिहंसि वा जाव अंतरावणंसि वा वत्थए ॥ १३ ॥ नो कप्पइ निग्गंथाणं इत्थिसागारियउवस्सए वत्थए ॥ २७ ॥ कप्पइ निग्गंथाणं पुरिससागारिए उवस्सए वत्थए ॥ २८ ॥ "

भावार्थ—साध्वीओंको दुकानमें सरियान मकानमें शृंगाटकाकारमार्गवाले स्थानमें और तीन—चार या अनेक रांस्ते जहांपर मिलते होवें वहां और अंतरापणस्थानमें रहना नहीं कल्पे ॥ १२ ॥ साधुओंको पूर्वोक्त स्थानमें (साध्वीको निषेधकिये हुए स्थानमें) रहना कल्पता है ॥ १३ ॥

स्त्रीसहित उपाश्रयमें साधुओंको रहना नही कल्पता ॥ २७ ॥

और साधुओंको पुरुषसहित वस्तिमें रहना कल्पता है ॥ २८ ॥

देखिए ! इन पाठोंसे साधुओंका शहरमें रहना साफ सिद्ध हुवा। क्योंकि—जङ्गलमें ही रहना होता तो मूल आगमोंमें ऐसा जिकर न आता कि 'दुकानमें या कूंचेके अग्रभागमें बनेहुए स्थानमें या तीन रास्ते जहां मिलते हों इत्यादि स्थानोंमें साध्वीओंको रहना नहीं

कल्पतां और साधुओंको कल्पता है। इसी तरह दशाश्रुतस्कंधके अष्टमाध्ययन श्री कल्पसूत्रकी समाचारीमें भी ऐसा पाठ आता है—

'वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पई निग्गंथाणं वा निग्गंथीण वा जाव उवस्सयाओ सत्तघरंतरं संखडिं' इत्यादि।

भावार्थ—चौमासा रहे हुए मुनियोंको उपाश्रयसे लेकर सात घरों तकका आहार लेना नहीं कल्पता है—देखो इन मूल पाठोंसे भी नगरमें रहना सिद्ध हुआ। क्योंकि जङ्गलोंमें ही रहना होता तो 'पासके सात घर छोड़ने' ऐसा कैसे लिखते। वस इसी तरहके अनेक पाठ नगरमें रहनेके प्रमाणरूप हैं। परन्तु ग्रन्थगौरवके भयसे यहां पर नहीं लिखे जाते। इसके वाद 'मारे तमने फरी जणावी देवुं जोइये' यहांसे लेकर 'प्रभु वीतराग होवाथी तेओने तेनी जरूर पण होती नथी' वहांतकका खण्डन प्रथम किये हुए खण्डनसे ही हो चुका है. क्योंकि—उस लेखमें वेचरदासका अभिप्राय यह है कि देवद्रव्यशब्द आगमोंमें नहीं है और वीतरागप्रभुका द्रव्यसे कुछ संबन्ध भी नहीं है, और न भगवान् कमाने गये थे। इन सब बातोंका खण्डन विस्तारसे हो चुका है। अर्थात् मूल आगमादि पञ्चाङ्गी-प्रमाणसे देवद्रव्यको सिद्धकर दिखाया है। और वीतरागके साथ द्रव्यके संबन्धके विषयमें भी विवेचन कर चुके हैं जिससे फिर खण्डन करना पिष्टपेषण जैसा हो जाता है।

हां, उस लेखमेंसे इस बातका खण्डन अवश्य होना

चाहिये कि–'वीतराग प्रभु कमाने नहीं गये जो उनका द्रव्य कहा जावे.' बेचरदासके बेवकूफी वाले इस कथन पर खेद होता है। क्या जो द्रव्य जिसका कमाया हुआ हो वही उसका कहा जाता है ? कदापि नहीं. जैसे राजा महाराजाओंके पास लाखों रुपयोंकी भेट चढती है तो क्या वह द्रव्य राजामहाराजाओंका नहीं कहा जाता? अवश्यमेव कहा जाता है। कोईभी ऐसा नहीं कहता कि 'राजा कमाने नहीं गया इस लिये वह द्रव्य राजाका नहीं हो सकता'।

बेचरदास—' आ द्रव्य छेज जैनसङ्घनुं अने आ नाणा जैन-समाजना उपयोगी कार्यमां न वापरी शकाय एवो शास्त्र तरफनो कोई पण वांधो आगमोमां छेज नहीं. आगमोना मारा अभ्यास पर-थी हुं तमने खात्री आपी शकुं. आवा द्रव्यनो स्वीकार पण त्यां नथी।

समालोचक—बेशक रक्षणकरनेके लिये समस्त जैन सङ्घ देवद्रव्यका मालिक है न कि भक्षण करने के लिये. अर्थात् देवद्रव्यकी वृद्धि करके उससे अनेकस्थलों पर देवमंदिर बने ऐसा प्रबन्ध करें और प्रभुके आभूषण वगैरह बनावें। परन्तु केवल देवके कार्यमें ही देवद्रव्य लग सकता है. अतः बेचरदासका यह कहना कि ' देवद्रव्य समाज उपयोगी किसी भी कार्यमें लग सकता है ' यह अनन्तसंसारको बढानेवाला है। क्योंकि आगमशास्त्रोंमें इस विषयपर ऐसें २ बड़े दृष्टान्त दिये गये हैं कि–अगर उनका यहा

पर उल्लेख किया जावे तो एक बड़ी भारी पुस्तक बन जाय। और दृष्टान्त—महावीर प्रभुसे लेकर जो जो बड़े बड़े आचार्य हुए हैं उन्होंके रचे हुए हैं न कि सामान्य पुरुषके। तथा चौदहसै चुम्मालीस ग्रन्थके कर्त्ता श्री **हरिभद्रसूरि** महाराजके वचनको जैन-समाज प्रभुवचनवत् मानता है। वे **संबोधप्रकरणमें** फरमाते हैं कि—

" जिणदव्वलेसजणियं, ठाणं जिणदव्वभोयणं सव्वं ।
साहूहिं चइयव्वं, जइ तम्मि वसिज्ज पच्छित्तं ॥ १०८ ॥ "

भावार्थ—जिनद्रव्य (देवद्रव्य) के लेश मात्रसे भी उत्पन्न हुए स्थानको और सर्वप्रकारके देवद्रव्यसे बने हुए भोजनको साधु लोगोंको छोड़ देना चाहिये, क्योंकि ऐसे स्थानमें रहनेसे और देवद्रव्यसे भोजन करनेसे प्रायश्चित्त लगता है. ॥१०८॥ अब पाठकजन स्वयं विचार करें कि लोकोत्तर ज्ञानदर्शन गुणोंकी वृद्धि करने वाळे और समस्तजनोंको सुधारनेवाले साधुजन भी देवद्रव्यके लेशसे भी मिश्रित द्रव्यसे बने हुए मकानमें धर्मादिककी वृद्धिके लिये भी निवास न करें तो फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि—' देवद्रव्य किसी भी सङ्घके उपयोगी काममें लग सकता है. भला साधु जैसे उपकारवृत्ति और त्यागवृत्तिवालोंकोभी देवद्रव्यके लेशसे बने मकानमें रहनेकी मनाई करते हैं—तो फिर मिथ्याज्ञानकी केलवणी (शिक्षा) आदि कार्यमें उस देवद्रव्यको कैसे लगा सकें ? मतलब—जिस केल-

वणीका फल लाड़ी गाड़ी और वाड़ीकी मौज मजा ही हैं और नास्तिकताको बढाना है ऐसी, अधम केलवणीमें देवद्रव्यका लगानातो नरक प्रद है ही है. परन्तु धार्मिक-सामायिक प्रतिक्रमण—प्रकरणादिके ज्ञान देनेमेंभी देवद्रव्यका लगाना पापबन्धका कारण है। अन्यथा ज्ञान देनेवाले साधुओंके लिये देवद्रव्यके लेशवाले मकानमें रहनेकी मनाई कदापि नहीं करते। क्योंकि उस मकानमें उनके रहनेसे धर्मकी ही प्रवृत्ति होती है। अब बतलाइए देवस्वरूप **श्रीहरिभद्र-सूरि** महाराजके वचनको मानें या नारक रूप बेचरदासके वचन कों मानें ? यह जरा सोचनेकी बात है। जिसके कलेजेको कीड़े खा गए होंगे वोही **बेचरदास** जैसे अधर्मान्ध और असत्यवादी-के वचनको मान सकता है।

तटस्थ—वेचरदासको अधमांध और असत्यवक्ता क्यों कहते हो?

समालोचक—देखिए अधर्मांध तो यों है कि **तमस्तरण** नामके लेखमें धर्मधुरन्धर पूर्वधरोंकी भी निन्दा कर डाली और असत्य-वक्ता तो स्थान २ पर जाहिरही है तथापि यहां पर इसलिये लिखा जाता है कि उस मूर्खने हरिभद्रसूरिमहाराजको अपने भाषणमें चैत्यवासी जाहिर किया है। देखिए सूरिमहाराजका वचनकि-" देवद्रव्यके लेशसेभी बनेहुए स्थानमें साधु रहे नहीं अगर रहे तो प्रायश्चित्त आवे. " अब विचार करो कि—ऐसे वचनके कहनेवाले **हरिभद्रसूरि** महाराज चैत्यवासी कैसे बन सकते हैं? क्या चैत्यवासीके

ऐसे वचन हो सकते हैं ? कदापि नहीं । इससे भी समझ लो कि बेचरदासने प्रमाणताको जलाऽञ्जली देदी है, और अशुभकर्मोंसे अप्रमाणिकताके पुञ्जको खरीद रक्खा है । इस लिये बेचरदास चाहे अपने कथनको छाती ठोककर कहे या माथाकूट कर कहे उसका वचन कदापि मान्य नहीं हो सकता । और हम इस विषयमें प्रथमही सिद्धान्तका अभिप्राय लिख आए हैं कि देवद्रव्य केवल देवके काममें ही लग सकता है. इस लिये नरकतिर्यंचगतिके दुःखोंसे डर हो तो किसीकोभी बेचरदासके वचनको सत्य नहीं मानना चाहिये. देखिए ! श्रीहरिभद्रसूरि. महाराज देवद्रव्यको खानेवाले की कैसी दुर्दशा लिखते है—यतः—

" चेइयदव्वं साहारणं च भक्खे विमूढमणसावि ।
परिभमइ तिरियजोणीसु, अन्नाणित्तं सया लहई ॥ १०३॥ "

अर्थ—चैत्यद्रव्य और साधारणद्रव्यको जो अज्ञानभावसे भी भक्षण करता है सो तिर्यञ्चयोनीमें भ्रमण करता है और हमेशा अज्ञानताको प्राप्त करता है ॥ १०३ ॥

अव विचार कीजिए कि देवद्रव्यकी वस्तुका अज्ञानतासे भी पभोग करनेसे महान् कष्ट उठाने पड़ते हैं तो फिर जानकर ऐसे पाप करनेवाले (यानी देवद्रव्यके भक्षग करनेवाले) कैसी अधोगतिके पात्र बन सकते हैं । फिर देखिए सूरि महाराज फरमाते हैं कि—

" चेइयदव्वविणासे, रिसिघाए पवयणस्स उड्डाहे ।
संजइचउत्थ (वय) भंगे, मूलग्गी वोहिलाभस्स "

भावार्थ—चैत्यद्रव्यके विनाशसे (यानी चैत्य सिवायके दूसरे काममें लगाना यह भी इसका विनाश कहा जाता है) और प्रवचनके उड्डाहसे और साध्वीके चतुर्थ व्रतके भङ्ग करनेसे वोधिवीज (सम्यक्त्व) का नाश होता है. इसलिये ऐसे अधर्मी असत्यवक्ताके भाषणपर विश्वास रखकर भूल चूकसे भी देवद्रव्यको अन्यकार्यमें लगानेका इरादा मत करना. क्योंकि आगमोंमें भी देवद्रव्यको स्वीकार किया है ।

तटस्थ—आप फिकर मत कीजिए, वेचरदास और उसके नास्तिक अनुयायियोंका मनोरथ सफल नहीं हो सकता । क्यों कि देवद्रव्यका रक्षकवर्ग सब आस्तिक है इसलिये वेचरदासके कथन-से सिवाय उसकी दुर्दशाके और कुछ फल नहीं निकल सकता मुझे इसके वर्त्तनपर दया आती है कि-बिचारेकी तंदुलियेमच्छ जैसी दशा हुई है । क्योंकि न तो देवद्रव्य इसके हाथम आया और नाहकमें उत्सूत्रमयप्रवृत्तिसे पूर्ण अधोगतिका पाप बांध लिया, अस्तु, इसके कर्म ही ऐसे होंगे, हम क्या कर सकते हैं । कृपया आगेका वर्णन सुनाइए ।

समालोचक—' हुं तेथी ' ऐसे शब्दोंसे लेकर—' छाती ठोकीने'

कहुंछुं ' इन शब्दों तकका खण्डन उपरके खण्डनमें हो चुका है ।
इस लिये आगे के खण्डनको श्रवण कीजिए !

तटस्थ—भला, सुना दीजिए !

बेचरदास—' हवे भूतकाळमां आपणा डेराओनी केवी स्थिति हती ते बाबत अजवाळुं पाड़ीश. असलमां बधां देहराओ जंगलों अने डुंगरों पर हता. आ देहरांओं आज जेम पैसाथी उभराई गयेलां होय छे तेम ते वखने नहोतां एटळे के आ देहरांओ त्यां सुखी जोखम वगरनां हतां. देहराओंने दरवाजाओ तो हताज नहीं । '

समालोचक—वाहरे वाह ! मूर्खानन्द ! भाषणके समयके लोगोंको तो अनभिज्ञ समझ लिया परन्तु क्या सारी दुनियाको अनभिज्ञ समझ ली थी ? जो ऐसी गप्प मारदी कि ' असलमां बधां देहराओ जंगलोंमां अने डुंगरों पर हतां ' क्या यह मालूम नहीं हुवाकि मेरे भाषणका मुखतोड़ जवाब देनेवाले अनेक सूत्रपाठी महात्मा मौजूद हैं ? एक तरफसे **बेचरदास** कहता है कि ' मैंने जैन आगम देखें हैं ' और दूसरी तरफ कहता है कि–' बधां मंदिरों जंगलों अने डुंगरों परज हता ' इससे साबित होता है कि–**बेचरदासने** अङ्गशास्त्रोंका अध्ययनही नहीं किया, अन्यथा ऐसी गप्प कैसे लगाता । देखिये ! प्राचीनकालमें भी अनेक जैनमंदिर शहरोंमें थे । ऐसा अनेक ग्रन्थ और सूत्रोंसे मैं साबित कर देता हूं. **श्रीविनयचन्द्रसूरिकृतमल्लीनाथचरित्र**के आठवें सर्गमें लिखा है—

" अथाचालीत् पुरोमध्यं, वीक्षितुं दिवसात्यये ।
× × × ×
निधानमिव धर्मस्य, दृष्टवान् जिनमंदिरम् ॥ "

अर्थ—इसके बाद यह कुलध्वज सायंकालको नगर देखनेके लिये गया वहां धर्मके निधानसमान जिनमंदिरको देखा । इस पाठसे भी शहरमें जिनमंदिर थे ऐसा स्पष्ट सिद्ध होता है । और भी देखिए श्रीसुपासनाहचरितके ११२ पृष्ठमें अरिकेशरीनामके महापुण्यशाली राजाने अनेक जिनमंदिर बंधाये—तथा च तत्पाठः—

" पइनगरं पइगामं, सव्वत्थ जिणेसराण भवणाइं ।
कारेइ निययदेसे, विसेसओ सुविहिअजणस्स " २६२

अर्थ—उस पुण्यशाली महानुभाग अरिकेशरी राजाने अपने देशमें प्रत्येकनगर और प्रत्येकग्राममें जिनमन्दिर बनवाये ॥ २६२ ॥ इससेभी नगरमें मंदिर सिद्ध होते हैं । और श्रीहेमचन्द्राचार्य महाराज श्रीमहावीर चरित्रके पृष्ठ ७ वें पर क्षत्रियकुंडग्रामके वर्णनमें लिखते हैं कि—

" स्थानं विविधचैत्यानां, धर्मस्यैकनिबन्धनम् ।
अन्यायैरपरिस्पृष्टं, पवित्रं तच्च साधुभिः । १६ । "

इस श्लोकसे शक्रने क्षत्रियकुंड ग्रामका स्वरूप वर्णन किया है । जिसके मुख्य प्रथमपादका यह अर्थ है कि क्षत्रियकुंडग्राम विविध जिनमंदिरोंका स्थान है. इससेभी शहरमें जिनमंदरोंका होना

सिद्ध होता है । इसी तरह वही हेमचन्द्राचार्य महाराज श्रीसुम-तिजिनचरित्रमें पूर्वभवका वर्णन करते हुए पुष्कलावतीके अंदर रही हुइ शङ्खपुरीके वर्णनमें लिखते हैं कि—

" विचित्रचैत्यहर्म्यादि-ध्वजदन्तुरिताऽम्बरम् ।
तत्र शङ्खपुरं नाम, पुरमस्त्यतिसुंदरम् ॥ ४ ॥ "

भावार्थ—अनेकजिनमंदिरोंकी ध्वजाओं करके दन्तुरित किया है आकाश जिसने ऐसा शङ्खपुर नाम नगर है, ॥ ४ ॥ इससे भी नगरमें जिनमंदिर सिद्ध होते हैं । तथा श्रीहैमिनेमिनाथ चरितमें देवताओंकी वनाई हुई द्वारिकानगरीके वर्णनमें लिखा है कि—

" विचित्ररत्नमाणिक्यै श्चत्वरेषु त्रिकेष्वपि ।
जिनचैत्यानि दिव्यानि, निर्मितानि सहस्रशः ॥ ४०३ ॥ "
सर्ग ५ पर्व ८

अर्थ—द्वारिकानगरीमें तीन रास्ते मिले हो वहां और चत्वरमें विचित्ररत्नमाणिक्यों करके दिव्य जिनमंदिर बनाये ॥ ४०३ ॥

श्रीनेमिनाथचारित्रमें नल राजा अपने पुरमें प्रवेश करते समय कोशलाके वर्णनमें दमयंतीसे कहता है कि—

" कोशलायाः परिसरमासाद्य च नलोऽवदत् ।
इयं हि नः पुरी देवि, जिनायतनमण्डिता ३९१ "

इस पाठसे भी प्रथम शहरमें जिनमंदिर थे ऐसा सिद्ध होता है ।

और भी देखिए चौदहसे चुम्मालीस ग्रन्थ के कर्त्ता श्रीमद्‌हरिभद्र-सूरि महाराज अपने बनाए हुवे सातवे पंचाशकमें लिखते हैं कि—

" दव्वे भावे य तहा, सुद्धा भूमी पएसकीलाय ।
दव्वे पत्तिगरहिया, अन्नेसिं होइ भावेउ ॥ १० ॥ "

इस गाथाकी टीकामें श्री अभयदेवसूरि महाराज फ़रमातेहैं कि ' द्रव्ये द्रव्यमाश्रित्य भावे भावमाश्रित्य चशब्दः समुच्चये । तथाऽनेन वक्ष्यमाणप्रकारेण विशिष्टप्रदेशादिलक्षणेन किमित्याह— शुद्धा भूमिर्निर्दोषा जिनभवनोचितभू र्द्विविधा भवति तत्राद्या तात्र-दाह—प्रदेशे विशिष्टजनोचितभूभागे । तथाऽकीला च शङ्कुरहिता । उपलक्षणत्वादस्थ्यादि शल्यरहिता च । द्रव्ये द्रव्यतः शुद्धा भूमि र्भवतीति प्रकृतं । अथ द्वितीयमाह अप्रीतिकरहिताऽप्रीति-वर्जिता ! इहाऽप्रीतिकशब्दस्य अन्येषामित्येतत् सापेक्षस्याऽपि समासः तदा दर्शनादिति । अन्येषां परेषां । भवति वर्तते । भावे तु भावतः पुनः शुद्धा भूमिरिति प्रस्तुतमेवेति गाथार्थः ॥ १० ॥

तात्पर्यार्थ—द्रव्य तथा भावसे शुद्ध जमीनमें जिनमंदिर बनवाना । द्रव्य शुद्धभूमि जहां पर श्रेष्ठ मनुष्य निवास करते हों वहां पर जिनभवन बनाना, यह द्रव्यसे शुद्ध भूमि है । इत्यादि । इससे साबित होता है कि आगमशास्त्रकी रीतिसे हमेशासे शहरमें मंदिर बनते आए हैं । यह कोई नया रीवाज नहीं. बारहवीं गाथामें श्री श्रीहरिभद्रसूरि महाराज फरमाते हैं कि—' जहां वेश्याका पाड़ा

हो जहां मद्यपादि अनेक नीचजनोंकी वस्तीहो ऐसे स्थलमें जिनमंदिर नहीं बन्धाना। क्या इससे अच्छे उत्तम जनोंकी वस्तीमें बन्धवाना सिद्ध नहीं हुवा ? देखिए, बेचरदास कैसा मूर्ख आदमी है कि ऐसे २ प्रभावक आचार्य महाराजोंके सिद्धान्तानुसार दिये हुए पाठोंको वगैर देखे बकदिया कि–पहले सब मंदिर जंगलोंमेंही थे।

तटस्थ—आपने हरिभद्रसूरि महाराज जैसे बड़े प्रभावक आचार्योंके प्रमाणसे शहरमें जिनमंदिर बनानेका विधिवाद साबित किया, परन्तु क्या किसी सूत्रमें भी ऐसा वर्णन है कि जिससे शहरमें जिनमंदिरका होना सिद्ध हो !

समालोचक—हां ! देखिए ज्ञाताजीके सोलहवें अध्ययनमें द्रौपदीजीके अधिकारमें इस विषयका पाठ मैं प्रथम देचुका हूं. ‘ तएणं सा दोवइ ’ इत्यादि) द्रौपदीने शहरकेही जिनमंदिरमें प्रभु प्रतिमाकी पूजाकी है। इससे साबित हैकि प्रभु नेमिनाथके वक्तमेंभी गाममें मंदिर थे। और देखिए श्रीउववाइयसूत्रमें लिखा है कि—

“ चंपानयरीए ×××× बहुला अरिहंतचेइयाइं ”.

मतलब—चंपानगरीमें भगवान्के बहुत मन्दिर है। इस पाठसे शहरमें जिनमंदिर होनेका रिवाज प्राचीन है आधुनिक नहीं। फिर आवश्यकसूत्रकी टीकामें सामायिकाध्ययनमें—

“ अंतेउरचेइयहरं कारियं पभावइए ण्हाता तिसंझं अच्चेइ।

अन्नया देवी नच्चइ । राया वीणं वाएइ ”

भावार्थ—प्रभावती देवी (राणी) ने अंतःपुरमें जिनमंदिर बनवाया और स्नान करके तीनोकाल पूजन करती है। एक दिन देवी (प्रभावती) नाचती है और राजा वीणा बजाता है ।

देखिए ! आवश्यकसूत्रके इस पाठसे भी शहरमें जिनमंदिरका होना सिद्ध होता है । तथा निशीथचूर्णिके दशमें उद्देशेमें भी ऐसा पाठ आता है कि ‘ प्राचीन कालमें भी शहरोंमें मंदिर बनते थे ’ तद्यथा—

“ ताहे पभावई ण्हाया कयकोउयमंगला सुकि ल्लवासपरिहाणपरिहया बलिपुप्फधूयकडुच्छूयहत्था गया । ततो पभावतीए चच्चं बलिमाविकाउं भणियं देवाधिदेवो महावीरवद्धमाण सामी तस्स पडिमा कीरउत्ति पहाराहि वाहितो कुहाडो एगघाए चेव दुहाजातंपेच्छूंति य पुव्वाणिवत्तियं सव्वालंकारविभूसियं भगवओ पडिमं साणेउं रण्णा घरसमीवे देवालयं काउं तत्थ ठविया. ”

भावार्थ—उस वक्त प्रभावतीने स्नान किया और किया है कौतुक मङ्गल जिसने और पहिने हैं शुक्ल वस्त्र जिसने तथा बली—पुष्प—धूपदाना है हाथ में जिसके ऐसी प्रभावती वहां पर आई और बली धूप वगैरहसे गोशीर्षचंदनकी पेटीका पूजन करके कहा कि—‘ श्रीदेवाधिदेव श्रीमहावीर वर्द्धमानकी प्रतिमा हो, ’ ऐसा

कह कर कुल्हाडा चलाया तो एक ही घावसे दो भाग हो गये और देखा तो पूर्वकी वनाई हुई सर्वालङ्कारसे विभूषित प्रभु महावीरकी मूर्ति निकली। उस मूर्तिको लाकर राजमहलके समीप मदिर बनाकर उसमें स्थापन की॥ इस निशीथचूर्णिके पाठसे भी साबित होगया कि प्रथमसे ही गाममें भी मन्दिर बनते आते हैं, आज कोई नवीन बात नहीं है। मुझे बड़ा अफ़सोस होता है कि—भाषण देते वक्त बेचरदासने कुछ नशा तो नहीं किया था? जो एक भी बात उसकी सच्ची नहीं जान पड़ती। जितनी बातें लिखी हैं सब झूठी ही झूठी निकलती हैं—उसका अदृष्ट (भाग्य) ही कोई टेडा हो गया है क्या?। हां ऐसा ही होना चाहिये। अन्यथा इतने सूत्र जिन बातोंको साबित करते हैं उन बातोंको यह कैसें उडाता! इससे साबित होता है कि उसका चक्कर खाया हुवा तक़दीर उसको अवश्य टेडी गतिसे नरक तक पहुंचा देगा। फ़िर देखिए, आवश्यकके तृतीय अध्ययनमें लिखा है कि—

'चेइयपूआ किं वयरसामिणा, मुणियपुव्वसारेण।
न कया पुरिआइ तओ, मोक्खंगं सावि साहूणं॥'

इसका भावार्थ—

पूर्वके सारको जाननेवाले श्रीवज्रस्वामीने पुरीनामके नगरके चैत्यकी पूजा (पुष्प लानेमें सहायतारूप) क्या नहीं की हैं? अपि तु की हैं। इससे समयविशेषमें साधुओंके वास्तेभी ऐसी पूजा

मोक्षाङ्ग बनजाती है। देखो! **आवश्यकजीके** पाठसे भी नगरमें जिनमंदिर था ऐसा सिद्ध होता है। फिर **वेचरदासका** कहना कैसे सिद्ध हो सकता है कि—'बधां देहराओ जंगलों अने डुंगरो पर हतां' देखिए, इसी तरह पञ्चमाऽङ्ग**श्रीभगवतीसूत्रके** दूसरे शतकके पांचवें उद्देसेमें तुङ्गियानगरीके श्रावकोंके अधिकारमें लिखा है कि—

"जेणेव सयाइं सयाइं गेहाइं तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता ण्हाया कयबलिकम्मा"

भावार्थ—वे श्रावक लोक अपने २ घर पर आये और स्नान करके प्रभु पूजाकी। इस भगवतीके पाठसे भी तुङ्गियानगरीमें अनेक जिनमंदिर थे ऐसा सिद्ध हुआ। फिर कौन कह सकता है कि 'शहरमें मंदिर नहीं थे।' इसके बाद यह कहना कि 'आ देहराओ आज जेम पईसाथी उभराई गयेलां होय छे तेम ते वखते नहोतां' बिलकूल मिथ्या कल्पना है। अगर इस विषयको सिद्ध करनेवाला कोई भी प्रमाण होता तो वेचरदास अवश्य कहता। परन्तु कहे क्या? जिसको झूठीही बातें कहकर लोगोंको धोखा देना है उसके पास प्रमाण कहांसे हो। वेचरदासने तो ऐसा कियाकि जैसे कोई जन्मभिक्षुक मांगता २ किसी सेठके घर पर जा चढ़ा, वहां पर लड्डुओंके शिखापर्यंत भरे हुवे बहुत स्थाल देखे, और आहा! हा! हा! हा! हा! कह कर बोला कि—'हा

बाप इतने लड्डुओंसे भरे हुवे स्थाल भूतकालमें किसीके भी घरमें नहीं थे' क्या उस भिखारीकी यह बात सत्यहो सकती है? कि भूतकालमें इतने लड्डुओंसे भरे हुये इतने स्थाल नहीं थे. कदापि नहीं। बस बेचरदासके कथनको भी ऐसाही समझना चाहिये। मात्र इतना फर्क है कि-सेठके लड्डुओं पर भिखारीकी नजर पड़ी जिससे खानेवालोंको कष्ट उठाना पड़ा, और यहां पर देवद्रव्य होनेसे वेचरदासकी नजर नहीं लग सकती। इसके बाद यह कहना कि 'देहराओने दरवाजा हताज नहीं, यह कहना ऐसा है जैसे वेचरदास कहदे कि मेरा कोई पिता थाही नहीं मै अपने आपही पैदा हो गया हूं! जैसे वेचरदासकी यह बात (मेरा पिता नहीं था) प्रमाण शून्य और अनुभव विरुद्ध होनेसे नहीं मानी जा सकती कि 'वेचरदास बिना बापके पैदा हुआ हो' बस इसी तरह प्रथमकी बात (देहराओनें दरवाजा तो हताज नहीं) भी प्रमाणशून्य और अनुभवविरुद्ध होनेसे कदापि सिद्ध नहीं हो सकती है.

वेचरदास—'चैत्यशब्दनो अर्थ देवलवृक्ष तथा बीजा अनेक थाय छे परन्तु चैत्यशब्दनो शद्बार्थ ए छे के, मरण पामेला संत महंतनी यादगिरीनुं तेज स्थले उभुं करवामां आवेलुं स्मारक" इत्यादि—

समालोचक—वेचरदासने वदतो व्याघात जैसा किया है। क्योंकि—प्रथम तो चैत्यशब्दके अनेक अर्थ कहता है परन्तु

पीछेसे ' चैत्यशब्दनो शब्दार्थ ए छे के ' ऐसा कह कर फिर जाता है। यही इसकी मूर्खताकी निशानी है और जो उसने मृत—महन्तोकी यादगिरीके लिये उनके संस्कार या मरणस्थानमें बनाए हुए स्मारकको चैत्यशब्दसे जाहिर किया है यह भी सिवाय प्रमाणशून्य, इसकी मनोकल्पनाके शास्त्रीयबात नहीं है। क्योंकि किसी भी ग्रंथसे **बेचरदास**की मनः कल्पना सिद्ध हो, ऐसा प्रमाण नहीं मिलता। और प्रमाण वगैरेकी बातको मानना अक्लमंदोंका काम नहीं। इसलिये समस्तजैनसङ्घको **बेचरदास**की यह असत्य-कल्पना विषतुल्य त्याग करने योग्य है। क्योंकि जैनग्रन्थोमें स्थान स्थान पर जहां चैत्यका अधिकार आता है वहां कहीं भी ऐसा नहीं लिखा कि—यादगिरीके लिये जो स्मारक बनाए जाते हैं उन्हें चैत्य कहते हैं। इसलिये स्मारकको ही चैत्य कहना बड़ी भारी भूल है स्मारक तो स्मारक ही कहे जाएंगे और वह प्रायः जंगलोंमें ही होते हैं क्योंकि—मृतमहंत जनोंका संस्कार जङ्गलोंमेंही होता है। परन्तु वह मूलरूप यादगिरिके लिये ऐसा बनता है बाकीतो उसके भक्तजन प्रतिग्राम प्रतिनगर उसकी यादगिरीमें स्थान बनाते हैं। जैसे थोड़े समय पर **श्रीमद्विजयानन्दसूरि** महाराज (प्रसिद्ध नाम श्रीमद् **आत्मारामजी** महाराज) की यादगिरीमें जहां उन्होंका अग्निसंस्कार हुवा था उसी स्थल पर गामकी बाहर हज़ारों रूपैयें खर्च करके भक्तिके निमित्त पञ्जाब गुजरानवालानिवासियोंने एक बड़ा भारी आलिशान **आनन्दभवन** बनाया है। जिसके

ऊपरके चमकते हुए सुवर्णकलश महाराज साहिबके पञ्जाब, गुजरात, मारवाड़, मेवाड़ादि देशोंमें किए हुए धर्मप्रकाशकी स्मृति दिलाते हैं। परन्तु इसके अलावा और भी अनेक गांवो तथा नगरोंमें उनकी यादगिरीके लिये स्थान बने हुए हैं इससे गामके बाहरही स्मारक बनते हैं; यह बात सर्वथा असत्य सिद्ध होती है। क्योंकि ऐसा तो होही नहीं सकता कि आजकलकी तरह प्रथमके लोगोंमें भक्ति नहो और जब भक्ति हो तो स्थान २ में उनकी यादगिरी बननेका संभव है। अस्तु, मन्दिरका विषयही इससे पृथक् है॥ क्योंकि अगर काल किए हुए स्थान पर महात्माओंकी यादगिरीके निमित्त बने हुए स्मारकही चैत्य कहलाएं तो महावीर प्रभुका मंदिर पावापुरी के, श्री नेमनाथ भगवानका गिरनारजीके, आदीश्वर प्रभुका मंदिर अष्टापदजीके. वासुपूज्यजीका चंपापुरीके और वीशतीर्थंकर भगवान के मन्दिर सम्मेतशिखरके सिवाय और किसी स्थानपर नहीं होना चाहिये। और स्थान २ पर जिनमंदिरका अधिकार आता है. इस विषयका विवेचन पहिले लिख आए हैं। और प्रत्यक्षमें भी अनेक स्थलों पर ऐसे २ प्राचीनतीर्थ मौजूद हैंकि जहां पर किसीकी भी यादगिरीका संभवही नहीं। अंतः बेचरदासकी इस असत्यकल्पनाको आस्तिकवर्ग कदापि नहीं स्वीकार कर सकता। देखिए, एक और भी प्राचीन प्रमाण सुनाते है इससे भी बेचरदासकी कल्पनाकी असत्यता जाहिर हो जायगी। कलिकाल सर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्यकृत श्रीऋषभप्रभुके चरित्रमें भगवान् ऋषभदेवजीके पूर्वभवके वर्णनमें

लिखा हैकि श्रीऋषभदेवजीके जीव और बाकीके पांच मित्रोंने मिलकर एक मुनिके रोगको दूर करनेके लिये औषधादि सामग्री एकत्रकी, और उससे मुनिको नीरोग किया, और बची हुई सामग्रीको बेचकर बड़ा भारी आलिशान जिनमंदिर बनाया। तथा च तत्पाठः—

" ततोऽवशिष्टगोशीर्षचंदनं रत्नकम्वलम् ।
तत्र विक्रीय जगृहुस्ते स्वर्ण बुद्धिशालिनः ॥ ७७८ ॥
तेन स्वर्णेन ते चैत्यं, सुवर्णेन स्वकेन च ।
कारयामासुरुत्तुङ्गं, मेरुशृङ्गमिवाऽऽर्हतम् ॥ ७७९ ॥

अब बेचरदासको विचार करना चाहिये कि—अगर मृतमहन्तोकी यादगिरीमें ही मन्दिर बनानेका रिवाज होता तो बतलाइये इन छ मित्रोंने किस मृतमहंतकी यादगिरीमें मंदिर बनाया था? बस इससे साबित है कि आजसे नहीं किन्तु अनादिकालसे स्मारककी रीतिसे नहीं मगर स्वतन्त्ररीतिसे जिनमान्दिर बनते आये हैं, बनते हैं, और बनेंगे। बेचरदासके निरर्थक थूंक उड़ानेसे कुछ भी नहीं बनता। नाहक बिचारा यहां परभी हांफहांफ मरेगा और नरकोंमें भी हांफेगा।

बेचरदास—' आ भभकानी चीजों देवलोमां हाल दश्य थाय छे ते असल हतीज नहीं '. इत्यादि।

समालोचक—ऐसी देदीप्यमान वस्तुएं मंदिरोंमें प्रथम नहीथी इसमें कुछ प्रमाण बताओं, अन्यथा तुह्मारी असत्यकल्पना कदापि मान्य नहीं हो सकती। क्या प्रथम समयमें द्रव्यकी कमी थी? जिससे मन्दिर शून्य पड़े रहते थे, या शास्त्रका आदेश नहीं था।

प्रथमकी कल्पना शास्त्रप्रमाण तथा इतिहासप्रमाणसे विरुद्ध है। क्योंकि—इन दोनों प्रमाणोंसे प्राचीनकालमें बड़े बड़े धनाढ्य सिद्ध होते हैं। अगर शास्त्रकी आज्ञा नहीं थीं ऐसा कहो तो तुम शास्त्रके अनभिज्ञ (अनजान) सिद्ध होनेहो देखो **श्रीहरिभद्रसूरि महाराजादि** के किए हुए **पञ्चाशकादि** ग्रंथोके प्रमाण जिनको मैं प्रथम लिख चुकाहूं इस लिये यहां पर पुनः नहीं लिखे जाते उन्हींकोदेखलेना चाहिए. **वेचरदास !** मैं तुमको हितशिक्षा देता हूं कि ऐसा मत करो जो अपनेको शास्त्रका बोध नहीं और कह देनाकि प्रथमके समयमें यह नहीं था, वह नहीं था, अमुक नहीं था, क्योंकि—ऐसे मृषावादसे तुम्हारी गति बिगड़ जानेका हमको भय है, इस लिये सत्यमार्ग पर आकर असत्य कल्पनाओंका त्याग करो। बादमें तुम्हारा यह कहना कि—'मूलमां पण एवो कोई ठेकाणे उपदेश नथी' इत्यादि। तो क्या तुम श्वेताम्बरजैनसमाजको केवल मूल मानने वालाही मानते हो? अगर नहीं तो फिर क्या तुम धोखा देने के लिये 'मूलमां मूलमां' ऐसा पुकार करते हो 'पञ्चाङ्गी-के मानने वालोंके पास मूलको आगे करना इसीसे तुम्हारी बुद्धि-का मूल पाया जाता है। अगर जैनसमाज तुम्हारी बातको मानकर मूलमें हो उतनी ही वातें माने तो—वीसविहारमानतीर्थङ्करदेवोंको भी मानना छोड दें। क्योंकि मूलमें इनका जिकर ही नहीं है। ऐसी एक बात नहीं अनेक बातें हैं जैसे कि—सामायिक—प्रतिक्रमण—पोषध आदिकी विधि भी मूलमें कहीं नहीं है। तो क्या इन सब बातों को

छोड़ देंगे ? कदापि नहीं जिसको पिछले घोर पाप कर्मोंनें दबाया होगा वही नास्तिकशिरोमणि अनन्तकालतक संसारमें रुलाने वाली तुम्हारी असत्यबातोंको सत्य मानेगा। और नहीं। क्योंकि आस्तिकलोगोंको तो पंचाङ्गी तथा उसके अनुकूल प्रभावक आचार्योंके बनाए हुए सभी ग्रन्थ सूत्रके मूलवत् ही मान्य हैं।

तटस्थ—मान्यवर महाशय ! मैं आपकी बातोंको अक्षरशः सत्य मानता हूं परन्तु कृपया यह बतलावें कि–पैंतालीस आगमोंमें से किसी भी आगममें वस्त्र आभूषणादि चढ़ाना लिखा है या नही ? उसमेंसे भी प्रथम ग्यारह अंगमेंसे हवाला देना चाहिये।

सम्मालोचक—क्यों नही। बराबर है। देखो अङ्गमेंसे **श्रीज्ञाताजी** सूत्र छट्ठा अङ्ग है उसके सोलहवें अध्ययनसे साफ जाहिर होता है कि–प्रतिमाजीको गहिना चढ़ानेका रिवाज सूत्रानुसार है। क्योंकि–ज्ञाताजीमें लिखा है कि–'**जहा सूरियाभे**' अर्थात् सूर्याभदेवताकी तरह द्रौपदीने प्रभुकी पूजाकी। और सूर्याभदेवताका अधिकार **श्रीरायपसेणीसूत्रमें** ऐसे आता है कि–उस सूर्याभदेवताने "**जिणपडिमाणं अहयाइं देवदूसजुअलाइं निअंसेइ पुप्फारोहणं-मल्लारोहणं गंधारोहणं चुण्णारोहणं वत्थारोहणं आभरणारोहणं करेइ**" अर्थात् भगवान्की मूर्तियां पर वस्त्र सुगन्ध और आभूषण (दागिने) चढ़ाये। अब देखिए जैसे सूर्याभदेवताने दागीने चढ़ाये वैसे ही द्रौपदीने भी चढ़ाये थे. यह बात श्रीज्ञातासूत्रके मूलपाठसे साफ जाहिर होती है। इस

लिए नवाङ्गीटीकाकार **श्रीअभयदेवसूरि** महाराजने भी इस पाठकी टीकामें लिखा है कि–'**वस्त्राणां गन्धानां चूर्णानामाभरणानां चाऽऽरोपणं करोति स्म**' अर्थात् उस द्रौपदीने भगवानकी मूर्ति पर वस्त्र गन्ध चूर्ण आभूषण आदि चढ़ाये। इन पाठोंसे साफ जाहीर है कि आभूषण चढ़ानेका रिवाज कोइ मुनियोंका चलाया हुआ नहीं किन्तु प्रभु महावीरस्वामीके मुखसे फ़रमाया हुआ है। परन्तु भाग्यहीन **बेचरदास**को मिथ्यात्वमादिराके नशेमें ज्ञान नहीं रहा, इसलिये उसकी समझमें नहीं आता तो इससे कुछ यह रिवाज मुनियोंका चलाया हुवा सावित नहीं होता। अगर उसने सूत्रग्रन्थोंको देखे होते तो ऐसा कभी नहीं कहता, अगर देखा भी होगा तो मिथ्यात्वके नशेंमे चकचूर होनेसे यहां पर (जहां भगवान्‌को आभूषण चढ़ानेका अधिकार है) आकर उसकी आंखे चुंधिया गई होंगी। अधिकार वगैर सूत्र पढ़नेसे तो उसकी आंखे चुंधिया (मीच) ही जानी थी परन्तु देखो जब जैनन्यायग्रन्थ **प्रमाणनयतत्वालोकाऽलंकार** पढ़ता था उस वक्त भी उसकी आंखें चुंधिया जानी चाहिये। अन्यथा **श्रीवादिदेवसूरि** महाराज कि जिन्होंने चौरासीवादिओंको जितने वाले दिगम्बर **कुमुदचन्द्रका सिद्धराजजयसिंह**की सभामें पराजय किया है उनके वनाए हुए **प्रमाणनयतत्वालोकाऽलङ्कार**के ग्यारहवें पृष्ठके पचीसवें सूत्रसे भी परमात्माकी मूर्तिको आभूषण चढ़ानेका रिवाज प्राचीन सिद्ध होता है। "**यथा–पश्य**

पुरः स्फुरत्किरणमणिखण्डमण्डिताभरणभारिणीं जिन-पतिप्रतिमामिति ।'

यह सूत्र उसके खयालसे बाहर नहीं होता । और भगवान्‌को गहिने चढ़ानेमें साधुओंको जोखिमदार जाहिर करना यह भी **बेचरदास**की एकजातकी बेवकूफी है । क्योंकि अगर कोई नास्तिक ऐसा कथन करे कि 'भगवान्‌को आभूषण चढ़ाने योग्य नहीं है' उस वक्त साधुवर्ग अगर चूप होकर बैठ जायें तो जिम्मे-दारी (जोखमदारी) साधुओंके शिर पर है । परन्तु आगमानुसार प्रभुकी भक्तिनिमित्त आभूषण चढें, उस वक्त जो निषेध करें तो वह निषेध करनेवाला महा पापका भागी होता है इस लिये आज-तक किसी भी आस्तिकसाधुने इस शास्त्रीयरिवाजमें विरोध प्रदर्शित नहीं किया है इससे **बेचरदास**को खुश होना चाहिये था परन्तु खुश होनेके बदले 'आ शरुआत माटे जोखमदार अने ज्वाबदार साधुवर्ग छे के जेओ पोतानी अनुकूलतानी खातर शास्त्रना नियमो तरफ तद्दन आंख मीचामणी करता हता' ऐसा कह कर रोता क्यों है ?

बेचरदास ! जरा विचार तो करना था कि—परमात्माको आभूषण चढ़े उसमें साधुओंको अनुकूलता किस बात की ? तुम्हारे इस बेवकूफी भरे हुए कथनसे तो वह कहावत याद आती है कि—"बारह वर्ष काशी में रहकर भी गधा आखिर गधा ही रहा"

बेचरदास—" असल देहराओमां मूर्तिओ वधी पद्मासन-वालिज हती कंदोरावाली मूर्तिओ जेम हती नहीं तेम नग्नमूर्तिओ पण हती नहीं पाछलथी ज्यारे श्वेताम्बरो अने दिगम्बरो एवा बे पक्ष पड्या त्यारे तेओए सघली मूर्तिओ वहेंची लेवा मांडी। पाछलथी ते मूर्तिओ एक बीजानी ओलखाय ते माटे हाल जे निशानीओ छे ते लगाड़वामां आवी छे। असल मूर्तिओमां आवी निशानीओज नहीं हती। "

समालोचक—**बेचरदास**की यह बात जब सत्य हो सकती है कि—वह ऐसी कोई प्राचीन मूर्तिको दिखलाता, अथवा कहता कि अमुक स्थान पर दोनो प्रकारके चिन्हरहित मूर्तिएं मौजुद हैं। **बेचरदास**ने जो जो बातें जाहिर की है बालबकवादके तुल्य हैं। अगर इस विषयका निश्चय करना हो तो **जैनधर्मप्रकाश**-के पुस्तक ३५ अङ्क २ देखना चाहिये। उसमें इस विषयके प्रश्नोत्तर दर्ज हैं। ये प्रश्न **बेचरदास**से सभाके तन्त्रिने रुबरु किये हैं। इन प्रश्नोत्तरोंको पढ़नेसे हमारे पाठकोको स्पष्ट मालुम होजायगा कि—**बेचरदास**ने मूर्तिके विषयमें निरी झूंठी गप्प मारी है और **बेचरदास**का यह कहना कि पीछेसे मूर्त्तिएं बांट लेने लगे तब निशानीएं लगादीं, सर्वथा असत्य है। क्यों कि कब और किस शहर में श्वेताम्बर दिगम्बरोंने एकत्रित हो कर मूर्त्तिएं बांटली, इसका कोई प्रमाणही नहीं बतलाया। बतलाए कहांसे ? जहां गप्पबाजीका खेल होता है वहां कोई प्रमाण मिल सकता है ? कदापि नहीं। इस

की असत्यताको जाहिर करने वाली एक और दलील सुनिये—जब एक जाति की वस्तुओंको दो पक्षवालोंने बांटली और एक पक्षवालेने समानाकार वस्तुके बदल जानेके भयसे एक तरहका चिन्ह लगादिया तब दूसरे पक्षवालेके पास रही हुई वस्तु उससे स्वयं पृथक् होसकती है, फिर उसको चिन्ह लगानेकी क्या जरूरत ? इससे भी श्वताम्बर और दिगम्बरोने जुदे जुदे चिन्ह लगादिये ऐसा **बेचरदास**-का कथन असत्य सिद्ध होता है। हां यह सत्य है कि लिङ्गाकार-शून्य कछोटबंध श्वेताम्बरमूर्तियें प्राचीनकालसे चली आती थीं जब महावीरप्रभुके निर्वाणके बाद ६०९ वर्ष पीछे दिगम्बरमत निकला तब दिगम्बरियोंने श्वताम्बर मूर्तिओंसे भेद समझानेके लिए अपनी लिङ्गाकार चक्षुःशून्य नवीन नग्नमूर्तिएं बनालीं।

बेचरदास "हवे एक अजायब भरी चीज़ म्हारे तमोने जणाववानी छे के मूल आगमो ए जैन धर्मना तत्वज्ञाननो दरिओ छे. जैनसाहित्य जे पाछलथी लखायुं छे तेमां अने मूल जैनआगमोमां एटलो बधो फरक छे के हालना साहित्य उपरथी जैन धर्मनी तद्दन गेरसमजुती उभी थाय।"

समालोचक—खबर नहीं **बेचरदास**को क्या हो गया है जो जो वातें अत्युत्तम हैं वेही उसको ठीक नहीं मालूम पड़ती। क्या कुछ इसका भविष्य ही बिगड़ने वाला है ? जैसे मरणसमय निकट आनेपर मनुष्यको शारीरिकस्थितिको सुधारने वाली वैद्यकी

पथ्यविषयक वाते भी अच्छी नहीं मालूम पड़ती। वैसीही **बेचरदास**की भी गति हुई है। जब चारों तरफसे जैनसाहित्य दुनियाके तमाम साहित्यसे उच्च कोटीका साहित्य स्वीकार किया जाता है तब **बेचरदास**को वह साहित्य जैन धर्मकी "गैर समझूती कराने वाला" मालूम पड़ता है, यही इसके दुर्भाग्यकी निशानी है। नहीं तो वैराग्यमार्गपोषक जैनसाहित्यको ऐसी तिरस्कारयुक्तदृष्टिसे कदापि नहीं देखता। अस्तु। इससे क्या। अगर प्रमेही घीको नहीं खाता तो इससे क्या घीकी कीमत घट सकती है? अगर उंटको द्राक्षा अच्छी नहीं लगती तो क्या द्राक्षाकी हानि होती है? अगर गधेको मिश्री मीठी नहीं लगती तो क्या मिश्रीकी मीठास उड़ जायगी? अगर उल्लुको सूर्यका प्रकाश अंधकाररूप मालूम होतो क्या प्रत्यक्ष प्रकाश अंधेरा कहा जा सकता है? कदापि नहीं। देखिए जैनसाहित्यके विषयमें **गायकवाड़ सरकार**की प्रथम नम्बरकी विद्याशालाके **हेडमास्तर पं. वासुदेव नरहर उपाध्यायने** महाराजा **सयाजीराव**के हुकमसे **हरिविक्रम** नामके जैनराजाके चरित्रका मराठी भाषामें अनुवाद किया है उसकी भूमिकामें लिखा है कि—"**जैनधर्म यांचा जसजसा सवन्ध त्यांचे नजरेस येत जाईल तसतसी ही नवीन सांपडलेली विलक्षण रत्नांची अगाध खाण पाहून त्यांचे मन आनन्द सागरांत निमग्न होईल.**"

भावार्थ—जब जैनसाहित्यका अच्छी तरहसे परिचय मिलेगा

की असत्यताको जाहिर करने वाली एक और दलील सुनिये—जब एक जाति की वस्तुओंको दो पक्षवालोंने बांटली और एक पक्षवालेने समानाकार वस्तुके बदल जानेके भयसे एक तरहका चिन्ह लगादिया तब दूसरे पक्षवालेके पास रही हुई वस्तु उससे स्वयं पृथक् होसकती है, फिर उसको चिन्ह लगानेकी क्या जरूरत? इससे भी श्वेताम्बर और दिगम्बरोंने जुदे जुदे चिन्ह लगादिये ऐसा **बेचरदास**का कथन असत्य सिद्ध होता है। हां यह सत्य है कि लिङ्गाकारशून्य कच्छोटबंध श्वेताम्बरमूर्तियें प्राचीनकालसे चली आती थीं जब महावीरप्रभुके निर्वाणके बाद ६०९ वर्ष पीछे दिगम्बरमत निकला तब दिगम्बरियोंने श्वेताम्बर मूर्तिओंसे भेद समझानेके लिए अपनी लिङ्गाकार चक्षुःशून्य नवीन नग्नमूर्तिएं बनालीं।

बेचरदास "हवे एक अजायब भरी चीज़ म्हारे तमोने जणाववानी छे के मूल आगमो ए जैन धर्मना तत्वज्ञाननो दरिओ छे. जैनसाहित्य जे पाछलथी लखायुं छे तेमां अने मूल जैनआगमोमां एटलो बधो फरक छे के हालना साहित्य ऊपरथी जैन धर्मनी तद्दन गेरसमजुती उभी थाय।"

समालोचक—खबर नहीं **बेचरदास**को क्या हो गया है जो जो बातें अत्युत्तम हैं वेही उसको ठीक नहीं मालूम पड़ती। क्या कुछ इसका भविष्य ही बिगड़ने वाला है? जैसे मरणसमय निकट आनेपर मनुष्यको शारीरिकस्थितिको सुधारने वाली वैद्यकी

पथ्यविषयक बाते भी अच्छी नहीं मालूम पड़तीं । वैसीही **बेचरदास**की भी गति हुई है। जब चारों तरफसे जैनसाहित्य दुनियाके तमाम साहित्यसे उच्च कोटीका साहित्य स्वीकार किया जाता है तब **बेचरदास**को वह साहित्य जैन धर्मकी "गैर समझूती कराने वाला" मालूम पड़ता है, यही इसके दुर्भाग्यकी निशानी है। नहीं तो वैराग्यमार्गपोषक जैनसाहित्यको ऐसी तिरस्कारयुक्तदृष्टिसे कदापि नहीं देखता। अस्तु। इससे क्या। अगर प्रमेही घीको नहीं खाता तो इससे क्या घीकी कीमत घट सकती है? अगर उंटको द्राक्षा अच्छी नहीं लगती तो क्या द्राक्षाकी हानि होती है? अगर गधेको मिश्री मीठी नहीं लगती तो क्या मिश्रीकी मीठास उड़ जायगी? अगर उल्लुको सूर्यका प्रकाश अंधकाररूप मालूम होतो क्या प्रत्यक्ष प्रकाश अंधेरा कहा जा सकता है? कदापि नहीं। देखिए जैनसाहित्यके विषयमें **गायकवाड़ सरकार**की प्रथम नम्बरकी विद्याशालाके **हेडमास्तर पं. वासुदेव नरहर उपाध्याय**ने महाराजा **सयाजीराव**के हुकमसे **हरिविक्रम** नामके जैनराजाके चरित्रका मराठी भाषामें अनुवाद किया है उसकी भूमिकामें लिखा है कि—"**जैनधर्म यांचा जसजसा सवन्ध त्यांचे नजरेस येत जाईल तसतसी ही नवीन सांपडलेली विलक्षण रत्नांची अगाध खाण पाहून त्यांचे मन आनन्द सागरांत निमग्न होईल.**"

भावार्थ—जब जैनसाहित्यका अच्छी तरहसे परिचय मिलेगा

तब इन नवीन जैनसाहित्य रूप प्राप्त हुए अगाध विलक्षण रत्नोंकी खानको देखकर देखनेवालेका चित्त आनन्दसागरमें निमग्न होगा। जो लोग जैनसाहित्यको नहीं देखते हैं उनको जैनसाहित्यके अनभिज्ञ होनेके कारण पवित्र जैनधर्म पर द्वेष होता है। देखिए एक अन्यमतावलंबी महाशय जैनसाहित्यके स्वल्पअंशके देखनेसेही जैनसाहित्यकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करते है, ऐसेही **जैनसाहित्यसम्मेलनकार्यविवरण** भा. १–२–के पृष्ठ ३३ सें लेकर पृष्ठ ४५ तक जैनसाहित्यके विषयमें एक अन्यधर्मावलम्बिविद्वान् महाशय **भावनगरनिवासि शास्त्रि जेठालाल हरिभाईने** एक प्रबन्ध लिखकर स्वानुभवसे युक्तिपूर्वक जैनसाहित्यको अतीव उच्चकोटीका साहित्य साबित कियाहै। तो इधर द्विचरनामक जैन उसी जैनसाहित्यसे मुंह मरोड़ कर कहता है कि—जैनसाहित्य ग्रन्थ जैनधर्मकी बाबत गैर समजुती करानेवाले हैं। अफसोस है इस मूर्खशिरोमणिकी लीला पर कि जिसने यह भी नहीं विचार किया कि—भारतवर्षीय तो क्या परन्तु युरोपियन विद्वानोंने भी जिस जैनसाहित्यकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की है उस उत्तम साहित्यको जैनधर्मकी गैरसमजुती (खोटी समझ) का कारण मैं कहता हूं, परन्तु मेरी इस असत्य बातको कौन मानेगा; और जैन नाम रखकर ऐसे अधमकार्य करनेसे मेरेपर चारों ओरसे कैसी तिरस्कारकी वर्षा होगी। मतलब कि इस विषयका **बेचरदासने** कुछभी विचार नहीं किया और झूट गप्प मारदी कि अपना साहित्य आगम ग्रन्थोसे भिन्नरूपमें है, अब हम

हमारे पाठकोंको सावधान करते हैं कि-याद रहे कि इस गप्पीदासके गप्पगोलेमें विश्वास नहीं रखना चाहिये। क्योंकि महान् धर्मधुरंधर पूर्वाचार्योंके रचे हुए साहित्यग्रन्थका कोई अंश आगमविरुद्ध नहीं है। मात्र '**विनाशकाले विपरीतबुद्धिः**' इस कहावतके अनुसार **बेचरदास**की बुद्धिमेंही विपर्यय हो गया है।

बेचरदास—" कमनशीबे हालमां साधुओ एम कहे छे के आ आगमो श्रावको वांची शके नहीं। याद राखो के आ आगमो हालमां श्रावको सांभली शके छे अने ते सामे साधुओंनो वांधो नथी बल्कि साधुओ पोतेज संभलावे छे " इत्यादि.

समालोचक—बेचरदास! अधिकार वगैर श्रावक लोग अगर आगमशास्त्र पढ़े तो उनको लाभके बजाय बड़ी भारी हानि पहुंचती है। उदाहरणमें तुमही हो, क्योंकि सूत्र स्वयं बांचनेसे तुह्मारी बुद्धिका नाश हुवा प्रत्यक्ष नजर आता है, अन्यथा वज्र-स्वामी आर्यरक्षित जैसे महात्माओंको भी तुम अंधेरा तेरनेवाले कदापि नहीं कहते। अब विचार करोकि जो सूत्रपठन मोक्ष देनेवाला है वही अधिकार वगैर तुमको नरकादि अधोगतिका देनेवाला हो गया। बस यही कारण है कि श्रावकोंको सूत्रपढ़नेकी मनाई साधुओंकी तरफसे नहीं किन्तु परमात्माकी तरफसे है।

तटस्थ—आपने यह क्या सुनाया! क्या ऐसा बन सकता है कि जो जैनसूत्रका पठन मोक्षदेनेवाला है वही अधिकार वगैर पढ़नेवालेको नरकादि देनेवाला बन जाय?

समालोचक—क्यों नहीं बराबर बन सकता है। देखिये जिसकी जेबमें चाकू है ऐसे एक आदमीको उसके किसी शत्रुने रस्सीसे बांध दिया और कहीं एक खुले स्थानमें रख दिया। किसी दिन दुश्मनकी नज़रको बचाकर उस बद्ध आदमीने शनैः २ अपनी जेबमेंसे चाकू निकालकर रस्सीको काटडाली और बन्धनसे मुक्त हो गया। अब किसी दिन उसी चाकूको उस बेसमझ आदमीने अपने लड़केके आग्रहसे उसको खेलनेके लिये देदिया। दैवयोगसे लड़का चाकू खुला रखकरके खेलने लगा इतनेमें वह चाकू उसके हाथसे गिर गया और उसका दस्ता एक छोटे खड्डेमें फस गया और धारका भाग बाहरकी तरफ रहा, इतनेमें उस लड़केको ठोकर लगी और उस चाकू पर पेटके बल गिर गया। वह तीक्ष्ण चाकू तुरत उस लड़केके पेटमें घुस जानेसे लड़केका प्राण निकल गया। अधिकार बगैर चाकूसे स्वतन्त्र खेलनेके कारण लड़केने अपना नाश किया। जैसे एकही चाकूने पिताको लाभ और पुत्रको हानी पहुंचाई, उसी तरह एकही सूत्र पढ़नेकी योग्यतावाले पितारूप साधुओंको लाभ और योग्यताहीन लड़केस्वरूप गृहस्थोंको नुकसान पहुंचाता है। हां, अगर गृहस्थ गुरुमुखसे सुने तो लाभ हो सकता है। इससे यह बखूबी साबित हो चुका कि—एकही वस्तु अधिकारवालेको लाभदायक और अनधिकारी मनुष्यको हानिकारक हो जाती है।

तटस्थ—वाह साहब वाह! युक्ति प्रयुक्तिसे तो आपने सिद्ध कर दिया कि—श्रावकको सूत्रपढ़नेका अधिकार नहीं है। परन्तु

आगमपाठसे सिद्ध कर दिखलाइए तब सच्चेका बोलबाला और झूंठेका मुंह काला होजाय.

समालोचक--देखिए ! उपासकदशाङ्गमें कामदेवश्रावकके अधिकारमें लिखा है कि—

'तएणं समणे भगवं महावीरे बहवे समणे निग्गन्थे निग्गन्थिओ य आमंतेत्ता एवं वयासी—" जइ ताव अज्जो ! समणोवासगा गिहिणो गिहमज्झे वसंता दिव्वमाणुस्सतिरिक्ख-जोणिए उवसग्गे सम्मं सहंति जाव अहियासंति। सक्का पुणाइ अज्जो समणेहिं निग्गन्थेहिं दुवालसंगं गणिपिडगं अहिज्जमा-णेहिं दिव्वमाणुस्सतिरिक्खजोणिए उवसग्गे सम्मं सहित्तए जाव अहियासित्तए ".

भावार्थ—उस समय श्रीमहावीरप्रभु बहुत साधु साध्वीओंको बुलाकर फरमाते हुए कि—हे साधु लोगों ! गृहस्थ श्रावकलोग घरमें वसते हुएभी देव--मनुष्य और तिर्यंचसंबन्धि उपसर्गोंको सहन करते हैं तो फिर द्वादशाङ्गकी वाणीको धारणकरनेवाले मुनियोंको तो अवश्य इनसे विशेष परिषह सहन करने चाहिये। क्योंकि; मुनि श्रुतज्ञानके धारक होते हैं। देखिए अगर श्रावकोंको अङ्गउपाङ्गके पढ़नेका अधिकार होता तो पूर्वोक्तपाठमें ऐसा नहीं कहा जाता कि श्रावक इतने उपसर्ग सहन करते हैं तो द्वादशाङ्गीके धारणकरनेवाले तुमको विशेषकरके सहनकरना चाहिये। बस

इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि श्रावकको सूत्रपढ़नेका अधिकारही नहीं है । फिरभी देखिए श्रीसूयगडांगसूत्रके नौवें अध्ययनमें लिखा है कि—

" गेहे दीवमपासंता, पुरिसादाणिया नरा ।
ते धीरा वंधणुम्मुक्का, नावकंखंति जीवियं ".

भावार्थ—पुरुषोंमें आदेयनामकर्मवाले धीरपुरुष घरमें सूत्ररूप दीपकको नहीं देखते हुए चारित्रको धारण करते है परन्तु सूत्रज्ञानशून्य असंयत जीवितको नहीं चाहते हैं। तथा श्रीभगवतीसूत्रके दूसरे शतकके पांचवें उद्देशेमें लिखा है कि " लद्धट्ठा गहियट्ठा पुच्छियट्ठा अभिगयट्ठा विणिच्छियट्ठा " इस पाठसेभी श्रावकोंको सूत्रपढनेका अनधिकार साबित होता है । अन्यथा " गहियसुत्ता लध्धसुत्ता " अर्थात् ग्रहण किया है अर्थ जिसने इस पाठके स्थानमें ग्रहण किया है सूत्र जिसने ऐसा पाठ श्रावकके विशेषणमें आना चाहिये था । और पुच्छियट्ठाके स्थान पर पुच्छियसुत्ता यानि पुछा है सूत्र जिसने ऐसा पाठ आना चाहिये था । परन्तु ऐसा पाठ नही है अतः सिद्ध हुआ कि श्रावक सूत्र न पढे । और देखिए, श्रीव्यवहारसूत्रके दशमें उद्देशेमें लिखा है कि—

" तिवासपरियागस्स निग्गंथस्स कप्पइ आयारप्पकप्पे नामं अज्झयणे उद्दिसित्तए । पंचवासपरियागस्स समणस्स कप्पति दसाकप्पववहारानामज्झयणे उद्दिसित्तए । अट्ठवास-

परियागस्स समणस्स कप्पति ठाणसमवाए नामं अंगे उद्दिसित्तए । दसवासपरियागस्स कप्पति विवाहे नामं अंगे उद्दिसित्तए ।

भावार्थ—तीन वर्षके पर्यायवाले साधुको आचारप्रकल्प बाचना कल्पता है । चार वर्षकी दिक्षापर्यायवालेको सूयगडांगसूत्र पढ़ना कल्पे । और पांच वर्षकी दिक्षा पर्यायवालेको दशाकल्पव्यवहार अध्ययन करना कल्पता है आठ वर्षकी दिक्षापर्यायवालेको ठाणांग और समवायांग सूत्र पढ़ना कल्पता है । दश वर्षकी दिक्षापर्याय-वालेको भगवतीसूत्र पढ़ना कल्पता है । इत्यादि पाठ है । अंतमें वीस वर्षकी दिक्षा पर्यायवाले साधुको सर्वसूत्र पढ़ने कल्पते है । अव विचार करो कि साधुभी अमुक २ वर्षकी दिक्षापर्याय हुवे बाद अमुक २ सूत्र पढ़ने लायक होतो फिर गृहस्थ कि जिसको एक दिनकाभी दिक्षा पर्याय नहीं है वह सूत्र कैसे पढ़ सकता है ? केवल श्रावकके लियेही सूत्रपढ़नेका निषेध नहीं है किन्तु साधुकोभी तीन वर्षकी पर्याय पहिले पूर्वोक्त सूत्रोंमेंसे एकभी अंग सूत्र पढ़नेका हुकम नहीं है । तथा श्रीउववाईसूत्रमेंभी लिखा है कि—

" अत्थेगइया आयारधरा, अत्थेगइया सूअगडंगरा " अर्थात् कितनेक साधु आचारांगके जाननेवाले और कितनेक सूयग-डांग सूत्रके जाननेवाले ऐसे साधुओंके नामसे प्रथम विशेषग लिखे होते है । परन्तु किसीभी जैन आगम ग्रन्थमें आचारांगके धारक या

सूयगडांगके धारक श्रावक, ऐसे विशेषण श्रावकशब्दसे पहिले नहीं लगाये हैं, इससे भी सिद्ध होता है कि अधिकार न होनेसे यह निषेध साधुओंकाही किया हुवा नहीं किन्तु प्रभु महावीरस्वामीका किया हुआ है अगर इस विषयमें विमोहित होकर जो सूत्र ग्रन्थोंको पढ़ते है वे अवश्य बेचरदासकी तरह भ्रष्ट हो जाते हैं ।

तटस्थ—आ हा ! हा ! इतने पाठोंके होने परभी पंडित **बेचरदास**को एकभी पाठ नहीं सूझा यह बड़ा आश्चर्य है । और उसका यह कहना कि 'मैं ग्यारह अंग पढ़ा हूं उनमें कहींभी श्रावकको सूत्रपढ़नेका निषेध नहीं किया है' सरासर झूठ है। क्या ऐसे झूठ बोलकर दुनियाको ठगनेसे वह सुखी बनेगा? कभी नही । हाय हाय, अज्ञानी जीवोंकी कैसी लीला है कि केवल इस लोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करनेके लिये मिथ्या (झूठ) बोलते जराभी नहीं डरते । शासनदेव ऐसी आत्माको बचावे । आप और कोई स्पष्ट पाठ बतलाइए जिससे लोगों पर उपकार हो ।

समालोचक—दसवें अङ्ग **श्रीप्रश्नव्याकरणमें** ऐसा साफ पाठ आता है कि जिससे श्रावक सूत्र नहीं पढ़ सकता ऐसा साबित होता है ।

तथा च तत्पाठः—"**तं सच्चं भगवंत तित्थगरसुभासिअं दसविहं चउद्दसपुव्विहिं पाहुडत्थवेइयं महारिसीण य समयप्प-दिन्नं देविंदनरिंदे भासियत्थं**" ।

भावार्थ—तीर्थङ्कर भगवान्ने दश प्रकारका सत्य कहा है और साधुजनोंको सूत्र ज्ञान दिया, और देवेन्द्रनरेन्द्रोंको सूत्रका अर्थरूप ज्ञान दिया है इस पाठसेभी साफ जाहिर होता है कि–खास परमकृपालु भगवान् महावीर प्रभुनेभी अधिकार वगैर श्रावकोंको सूत्रज्ञान नहीं दिया किन्तु अर्थज्ञान दिया था। इस पाठसेभी साफ जाहिर है कि श्रावकोंको सूत्र पढ़नेकी मनाई प्रभु महावीर स्वामीके समयसेही है इतनाही नहीं बल्कि तमाम तीर्थङ्कर प्रभुओंका यही कथन है कि श्रावकसूत्र न पढ़े। बस यही कारण है कि अगर साधु श्रावकको सूत्र पढ़ावें तो साधुको प्रायश्चित आता है। देखिये श्रीनिशीथसूत्रका पाठसे "भिक्खु अणउत्थियं वा गारत्थियं वा वाएइ वायंतं वा साइज्जइ तस्सणं चाउम्मासियं".

अर्थ—जो साधु अन्यतीर्थिको या गृहस्थोको वाचना देवे या वाचना देनेवालेको सहायता देवेतो उसको चातुर्मासिक प्रायश्चित आवे! इन सब पाठोंसे अच्छी तरहसे साबित हुवाकि श्रावक सूत्र नहीं पढ़ सकता। पाठकजनों! श्रावक सूत्र नहीं पढ़े इस विषयका शास्त्राधारसे साधुलोग जब विधिवाद बताते हैं तब बेसमझ बेचरदास कहता हैकि–" आ गप्प जे तद्दन ज शास्त्रविरुद्ध छे ते शा माटे मारवामां आवी हशे ! " अब जरा विचार करोकि बेचरदासकी विना प्रमाणकी बातें मान्य करने लायक हैं? या प्रमाण पुरःसर शास्त्रकारोंकी बातों मान्य करने योग्य हैं?। अगर तुम (पाठक वर्ग) इग्नीज नहीं हो तबतो शास्त्रके प्रमाणकोही मान्य रखकर स्वयं गृहस्थ

होनेके कारण सूत्र पढ़ना तो दूर रहा परन्तु श्रावक होकर जो पढ़ता हो उसेभी सहस्रशः धिक्कारवाद देना चाहिये। और जो बीजही दग्ध हो गया हो तो फिर उपाय नहीं जिसकी इच्छामें आवे वैसा करें और अनन्तकाल तक संसारमें भटक २ मरें कौन रोकता है। इसके बाद " तांत्रिक युगना साधुओनुं चारित्र्य एटलुं तो शिथिल थई गयुं के तेओने एवुं लाग्युं के जो श्रावको खरा साधुओ केवा होय ते बाबत आगमोमां जोशे तो आपणा जेवा शिथिलचारित्रवालाने उभाज नहीं राखे, अने आपणने कदाच साधु तरीके कबुलशे पण नहीं " बेचरदासका यह कथनभी युक्तिशून्य है। यथा प्रथम मै लिख आया हूं कि—" जैन मुनियों पर तान्त्रिक-युगका लेशमात्रभी असर नहीं हुवा है।" अगर थोड़े कालके लिये बेचरदासकी इस असत्य कल्पनाको मान लेवें तोभी इसका मनोरथ सिद्ध नहीं हो सकता क्योंकि—अगर मुनियोंपर तान्त्रिक-युगका असर हुवा होता तो फिर शास्त्र पढ़नेकी मनाई करनेकी अपेक्षा शास्त्रोंमें शिथिलाचारके पोषक वाक्य डालना यानी सूत्रोंकोही पलटा देना यही इनके सदैव शिथिलाचार चलनेका मजबूत उपाय था इसलिये इसी उपायका शरण लेतेतो उनकों कौन रोक सकता था। बस इससेभी साबित होता हैकि बुद्धिरूप नयन पर पक्षपातके चस्मे चढ़ा कर जिसवक्त बेचरदासने जैनधर्मविरुद्ध बकवाद शुरू किया है उसवक्त मगजमें अवश्य गरमी चढ़ जानी चाहिये। अन्यथा एक बालकभी समझ सके ऐसी असत्य कल्पना कदापि नहीं

करता और यह विचारताकि साधुओंको अगर अपना स्वार्थही पोषण करना था तो आगम उनके हाथमेंही थे तुरत बिगाड़ देते। परन्तु साधु लोग वेचरदास जैसे धर्मभ्रष्ट नहीं थे जो एक वचनकीभी अन्यथा प्ररूपणा करें। मतलब यह सिद्ध हुवाकि 'अपने शिथिलाचारको छुपानेके लिये साधु लोग श्रावकोंको सूत्र पढ़नेकी मनाई करते रहे' वेचरदासकी यह कल्पना ऐसी हैकि जैसे कोइ कहेकि गधेके सींगसे बने हुए तीरसे मैंने बांझके पुत्रको विंधकर आकाश-कुसुमको विंधा। और विशेषावश्यकका नाम लेकर लोगोंको झूठा धोखा देता है, क्योंकि-संपूर्ण विशेषावश्यकमें एक पङ्क्तिभी ऐसी नहीं हैकि जिसमें लिखा होकि 'श्रावक स्वयं सूत्र पढ़ें।' अस्तु, ऐसी गप्प मारनेवालोंकी परमाधामीही खबर लेंगे। और 'साधुलोग स्वयंसूत्र सुनाना स्वीकारते हैं पर श्रावक स्वयं सूत्र पढ़ेतो विरोध जाहिर करते हैं' वेचरदासके इस कथनसेभी शिथिलाचारको छिपानेके लिये साधु श्रावकको सूत्र पढ़नेका निषेध करते ऐसा सिद्ध नहीं हुवा। क्योंकि अगर इसी भयसे श्रावकको सूत्र पढ़नेका निषेध करते होंतो फिर स्वयं सूत्र ग्रन्थोंको सुनाते क्यों? देखिए वेचरदासके इस विरुद्ध कथनसेही उसमें उन्मत्तता सिद्ध होती है। और एक यहभी बात हैकि सूत्रोंके सिवाय अन्य अनेक प्रकरणग्रन्थ हैकि जिनमें भली प्रकारसे साधुओंके आचारका वर्णन किया गया है अगर साधु शिथिलही थे और हमारी शिथिलताको श्रावक जान जायंगे तो हमें खड़ेभी नहीं रहने देंगे ऐसा उन्हें भय थातो फिर

उन्होंने ऐसे उत्कृट आचारके वर्णन करनेवाले ग्रन्थ क्यों बनाए? इस दलीलसेभी बेचरदासकी कपोलकल्पनारूप ढोलकी पोल जाहिर हो जाती है।

तटस्थ—भला यह क्या बात है, जब साधुलोग श्रावकको सूत्र सुना सकते हैं तो श्रावक स्वयं उन सूत्रोंको क्यों न पढ़ सकें?

समालोचक—भला यह क्या सवाल किया, यहतो एक छोटा बच्चाभी समझ सकता हैकि—जैसे पक्षीके छोटे बच्चेको उसकी माता चुगा लाकरके खिलाती है उसवक्त वह बच्चा अपनी माताकी अपेक्षाको छोड़कर स्वयं चुगा करनेके लिये घोंसले (माळे)से नीचे गिरेतो पांखोंके अभावसे इसकी मौतही आई समझनी अब इस दृष्टान्तसे श्रावक वगैर योग्यताके (जब साधुमेंभी अमुक अमुक वर्षोंकी बाद अमुक अमुक सूत्र पढ़नेकी योग्यता आती है तो फिर गृहस्थोंमेंतो सूत्र पढ़नेकी योग्यताकी बातही कहां रही) अगर गीतार्थगुरुमुखसे सूत्र सुनें तो माँके मुंहसे लिये हुए चुगेकी तरह सुन सकता है परन्तु स्वयं सूत्र पढ़नेका इरादातो ऐसा हैकि जैसे बच्चेका स्वयं चुगा खानेको जाना, बल्कि उससेभी अनन्त गुण ज्यादह दुःखप्रद है। क्योंकि स्वतन्त्रतामें पसंद रहनेवाले पक्षीकी तो एकवारही मौत होती है परन्तु प्रभुआज्ञासे विरुद्ध होकर स्वतन्त्र सूत्र पढ़नेवाले गृहस्थकोतो अनन्तवार मरना पड़ता है।

तटस्थ—भो महात्मन् ! मेरे पर आपकी तरफसे बड़ा उपकार हुआ है। मैं अपनी उम्रमें गृहस्थ सूत्र पढूं इस दुष्टश्रद्धाको अपने नजदिकमें ही नहीं आने दूं। आप कृपाकरके आगेका खण्डन सुनावें।

समालोचक—इसके बाद **वेचरदासने** जैनसाहित्यके विषयमें अगड़ं वगडं उत्पटांग वातें कह डाली हैं जिन बातोंका जवाव प्रथम में लिख चूका हुं इस लिये यहांपर दुबारा लिखनेकी आवश्यकता नहीं हैं। और यहभी वात है कि खुद **वेचरदासने** पूर्वोक्त **जैनधर्मप्रकाश** नामके मासिकपत्रमें कल्पितका अर्थ असत्य ऐसा नहीं स्वीकारा है किन्तु आलङ्कारिक कबुल किया है। जब कल्पितका अर्थ असत्य नहीं है तो **वेचरदासके** इस कथनसे ही कथाभाग की सत्यता सिद्ध हुई। और वह सत्यताभी कैसी (**वेचरदासके** करे हुवे अर्थसे) आलङ्कारिक है इससे और भी अधिक खुशीकी बात हुईकि एक सोना और दूसरी सुगन्ध सिद्ध हुई है। जब **वेचरदासके** वचनसे साहित्यकी चढ़ती कला सिद्ध हुई तो फिर इस वियषमें ननुनचकी जरूरत ही क्या रही। अगर **वेचरदासने** तंत्रिके सम्मुख कल्पितकथाका अर्थ झूठी कथा ऐसा किया होता तो अवश्य इस विषयमें भी कुछ लिखता। इसके बाद एक ईटकी चौरीसे चोथीनरकमें जानेके दृष्टांतको कहांसे लिया ? ऐसा तंत्रीने अपनी सभामें **वेचरदाससे** प्रश्न किया था इस विषयका खुलासाभी **वेचरदास** नहीं कर सका है। और

चौथी नरकके उद्देससे वाक्य जो उसने कहा था उस कथनमें भी वह झूठा सिद्ध हुआ है. क्यों कि किसी भी जैनग्रन्थके प्रमाणसे ईंटका चौर चौथीनरकमें जाय इस जिकरको साबित नहीं कर सका है। कोईभी बात हो मगर जबतक उसका प्रणेता सिद्ध न हो वहां तक '**पुरुषप्रमाणे वचनप्रमाणं**' इस न्यायसे उस बातकी सिद्धिके लिये कॉलमभरने मुझे पसंद नहीं है, इस लिये कोईभी बात लिखनी हो तो प्रथम उस बातके कथन करने वाले पुरुषका पब्लिकको परिचय अवश्य कराना चाहिये। तबही खण्डन-कर्त्ताको खण्डन करनेकी अभिरुचि उत्पन्न होती है बाकी जैन-मन्तव्यसे विरुद्धबात सामान्यरीतिसे कथनकी हो तो भी उसका खण्डन करना आवश्यक है। इसके बाद **बेचरदास**का कर्मसिद्धांतको भी जानता हो ऐसा ढोंग उसमें जीवरामभट्टपना सिद्ध करता है और इस कहावतको चरितार्थ करता है कि 'कुछ आवे न जावे चतुर कहावे' अगर **बेचरदास**को कर्मसिद्धांतका जराभी ज्ञान होता तो बाह्यसामग्रीको अल्पतामें नरकगति कैसे हो सके ऐसा विकल्प कदापि प्रतिपादन नहीं करता। क्योंकि उसने दृष्टांत दिया उसमें तो एक ईंटकी भी बाह्य सामग्री है, परन्तु, **प्रसन्नचंद्रराजर्षि**को कौनसी बाह्यसामग्रीका योगथा जिसको श्रेणिक महाराजके किये हुए प्रश्नके उत्तर में प्रभु **महावीर** स्वामीने सातमी नरकमें जानेके योग्य कहाथा। तन्दुलियेमच्छको बाह्यसामग्रीका लेशभी योग नहीं होने पर भी उसका सातवी नरकमें गमन होता है, इससे साबि-

त होता है कि बाह्यसामग्रीके बिलकुल अभावमें या अल्पतामें भी तीव्रमनोदुष्टता होनेसे जीव विशेषअधोगतिका भागी बन सकता है। कर्मसिद्धांतका ज्ञान तो इस पामरको क्या होना था परंतु लोकविषय-का ज्ञानभी विचारेको नहीं है । देखिये ! एक आदमीको कांटा लगता है और वह मर जाता है और एक आदमीको गोली लगती है तोभी नहीं मरता, जिस आदमीको एक मामुलीसा ज्ञानभी नहीं ऐसा आदमी जैनसाहित्यपर विचार करे यह भी एक आश्चर्यकी बात है कहावत भी है कि ' **रत्नपरिक्षक जानिये, जोहरी नहीं गंवार** ' यानी गंवार कदापि रत्नोंकी परीक्षा नहीं कर सकता किन्तु जोहरी ही कर सकता है मै कहां तक लिखूं, बेचरदासकी तमाम बाते जहालतसे भरी हुई है। जहालत भी वहांतक जाहिर की है कि परले दर्जेके महात्मा उपकार भी नहीं करते। इस बातको कहने वक्त बेचरदासने जहालतका खजाना ही खाली कर दिया है क्यों कि दुनिया की कोई भी विदुषी व्यक्ति इस बातको स्वीकार नहीं कर सकती कि परले दर्जेके महात्मा उपकार शून्य हों। महात्मा-ओंकी ऐसी कोई भी क्रिया नहीं जिसके द्वारा जगतका उपकार न हो। ऐसी झूंठ गप्प मारनेमें बेचरदासका यह अभिप्राय होना चाहिये कि तीर्थङ्कर प्रभु जगत्के उपकारी सिद्ध न हों तो जैन-साहित्य अन्यकृत सिद्ध हों। और ऐसा होनेसे बेचरदासकी मनोवृत्तिको पुष्टि मिले । परन्तु ' वह दिन कहां जो मियांके पांवमें जुत्ती ' जैन समाज अपने शास्त्रकथनको छोड़ कर बेचर-

दासके इस मिथ्याकथनको कदापि सम्मान नहीं देसकता । शास्त्रों-में तीर्थङ्कर महाराजाओंको अनुपम उपकारी माने हैं, तथापि बेचरदास उन्होंके किये हुए उपकारोंको किसी अधमवांछाको पूर्ण करनेके लिये दबाना चाहता है । परन्तु अनेक सूत्रोंसे प्रसिद्ध प्रभुउपकार कदापि नही दब सकता, हां, बेचरदासने अपनी जिस अधम मनोवाञ्छासे यह कपोलकल्पना जाहिर की है उस वाञ्छा-को ही दबाना पड़ेगा ।

बेचरदास—' आजना अमूल्य प्रसंगे मने मारूं अंतःकरण खाली करवा दो, आपणामां पजुषण पर्वमां एवो रिवाज छेके चौद-सुपना श्री महावीरना जन्म दिने उतारवां, हवे आ स्वप्न उतारवामां अेटलुं वधुं पुण्य मनाय छे× × × × ×
'पण मारे खुल्ला दिलथी अने शास्त्रों अने आगमोंना पुरावा परथी जणावी देवुं जोइये के आ रूढि पुण्यनी नहीं पण पापनी छे ”
इत्यादि—

समालोचक—सुपने उतारनेके विषयमें भी बेचरदासने युक्ति-शून्य कथन किया है और साथमें अपनी धूर्तताका पब्लिकमें परिचय दिया है क्यों कि लोगोंके सामने मिथ्याडम्बर तो इतना जाहिर किया है कि—शास्त्र और आगमोंके अनुसार सुपने उतारने विरुद्ध हैं ऐसा बकवाद तो कर दिया परन्तु श्रीहरिभद्रसूरि महारज, श्री विजयहीरसूरि महाराज जैसे एक भी प्रामाणिक

महात्माके बनाए हुए ग्रन्थका प्रमाण नहीं दिया है कि देखो! फलाने ग्रन्थमें सुपने उतारनेका निषेध किया है, अथवा अमुक आगममें मनाई की है और इस विषयका यह पाठ है। इत्यादि यानी प्रमाणकी गन्ध भी बेचरदासके भाषणमें नही है और केवल निरा बकवाद ही किया है कि यह रूढि पापकी है। एक धर्मक्रियाको बगैर शास्त्रके अक्षरोंके देखे पापक्रिया कहनेसे प्रथम जिव्हाके सहस्रशः टुकडे होजाएं तो अच्छे हैं, परन्तु उस जिव्हासे ऐसे शब्द निकलने अच्छे नहीं क्योंकि ऐसे अक्षर बोलनेसे भव भवके लिये जिव्हाका छेदन भेदन सहना पडेगा। इससे एक ही बार होना बेहेतर है। बेचरदासके पाप रूढि कहनेसे स्वप्न उतारनेकी रूढि पापरूढि नहीं हो सकती। जैसे वेश्या सतीत्वधर्मको घोरपापमय बताए और अपने व्यभिचारको धर्मरूढि कहे तो क्या उसका वाक्य सत्य हो जायगा? कदापि नहीं। बस इसी तरहसे बेचरदासके वाक्यको भी समझ लेना चाहिये। क्योंकि जैसे परमकृपालु प्रभुकी मूर्ति प्रभुगुणोंके स्मरणमें कारण होनेसे नाना प्रकारके आभूषणादि चढाकर रथमहोत्सवादि द्वारा पूजी जाती है, और यह रूढि पुण्योपार्जनका हेतु है सो बात शास्त्रसिद्ध है। इसी तरह प्रभुके गर्भमें उत्पन्न होनेके समय उनकी माता जिन स्वप्नोंको देखती है उन स्वप्नोंसे भी अपनेको प्रभुगुणका स्मरण होता है जिस प्रकारसे प्रभुकी मूर्त्ति प्रभुगुणस्मरणमें कारण होनेसे नाना-प्रकारके आभूषण, चंदन, अक्षत नैवेद्यादिसे पूजी जाती है, और

हजारों रुपैये खरच करके बड़े बड़े स्नात्र महोत्सव करते हैं, उसी तरह चौदह सुपने भी प्रभुगुणके स्मरणमें कारण होनेसे जिसप्रकारसे गुणस्मरणमें आदरकी दृष्टिसे देखे जावें उसी प्रकारसे पुण्यरूढिके सूचक हैं। भाग्यहीन बेचरदासको पाप रूढि मालूम पड़े तो क्या उपायहो। 'यादृशी दृष्टिस्तादृशी सृष्टिः' अन्यधर्मावलंबीभी जैनधर्मकी कितनीक पवित्र क्रियाओंको अपवित्र मानकर पापरूढि कह देते हैं तो क्या उन मिथ्या दृष्टिओंका कथन सत्य हो सकता है? कदापि नही। इसी तरह बेचरदासका कथन भी मिथ्यात्वप्रेरित होनेसे असत्य समझना चाहिये। महावीर प्रभुके गर्भागमनसूचक स्वप्न उतारने समय प्रभुके गुणोंमें एसा चित्त आकर्षण होता है कि इस चित्त आकर्षणसे पुण्यबन्ध हुए वगैरे नही रह सकता और कितनेक विशेष भाग्यशाली जीवोंको तो यह प्रथा निर्जराकाभी कारण बन जाती है। परन्तु नास्तिक बेचरदासको अपनी उम्रमें शायद दुर्भाग्यवश ऐसा भावही नही आया होगा। जिससे स्वप्न उतरनेकी पुण्यरूढि को भी पापरूढि बतलाता है। हा, बेचरदासके लिये उन स्वप्नों पर द्वेष आने से पापक्रिया बन सकती है, परन्तु सब के लिये नहीं। जैसे प्रभुकी मूर्त्ति ढूंढियोंको अप्रीतिका कारण हो जानेसे पापबन्धनका हेतु मालूम हुई और इस विषयमें पञ्जाबके ढूंढिये तो उदाहरण रूप है हीं परन्तु गुजरातमें भी लींबड़ी, बोटाद आदि के ढूंढियेभी उदाहरण रूप है, तो क्या इससे श्वेतांबरमूर्तिपूजक-

चगकोभी मूर्त्तिपूजन पापका कारण बन सकता है ? कदापि नहीं। बस इसी तरहसे बेचरदासकोभी स्वप्न उतारनेकी क्रिया परिणतिकी विषमतासे पापका कारण हो परन्तु आस्तिकजैनभाईयोंको तो पुण्यबंधन या निर्जराका ही कारण है। और इस विषयमें सूत्र पाठ नहीं देते हुए मात्र कल्पसूत्रकीही साक्षी देता हूं कि, देखो चौदहपूर्वधर श्रीभद्रबाहुस्वामीने द्वितीय तथा तृतीय बांचनीकी अदर अपनी बाणीद्वारा स्वप्नोंकी कैसी महिमा गाई है। जब चौदह पूर्वधर महात्माके मुखसे निर्गतअनर्गलविशेषणोंसे विशिष्ट स्वप्नोंकी महिमा जो जैन जन न करें तो फिर इनके जैसा परलेदर्जेका नास्तिक ही कौन बन सकता है ? अपने युगप्रधान शिरश्छत्र पितामह चौदह पूर्वधर भद्रबाहुस्वामी स्वप्नोंकी महिमामे लगभग दो बांचनी जितना वर्णन करें और श्रावक वर्ग घंटे दो घंटे जितने टाइम से और थोड़ेसे पैसे खरचनेसे ही घबरा जायं तब उसके जैसा हतभागी कौन ? अगर बेचरदासके कथनानुसार पुत्र वगैरके और जहाजके व्यापारी मनुष्य अमुक अमुक स्वप्न लेने है तो इससे भी वे पापके भागी कैसे हो सकते हैं ? तुम्हारे जैसे श्रद्धावगैरके आदमीसे पुत्रादिसंसारीकामनाके निमित्त भी श्रद्धापूर्वक धर्मक्रिया के करनेवाले अच्छे है। हां, उनकी करणी मोक्षके निमित्त नहीं हो सकती परन्तु पापमयक्रिया नहीं है। मात्र ऐसा कहा जा सकता है कि जैनधर्मकी क्रिया करनी और उसमें संसारकी वान्छा रखना ठीक नहीं है परन्तु ऐसे धर्म करनेसे पापबंधन होता है ऐसा उल्लेख

कहां है ? यह बेचरदासको मूलआगमके किसी पाठसे दिख-
लाना चाहिये था। हां इतना कह सकते है कि-सांसारिक सुखकी
लालसामें पड़ कर धर्मकरणीमें लगना सो चिन्तामणिको देकर
पावभर सुवर्ण लेने जैसा है। परन्तु सुवर्ण जितना भी लाभ तो
रहाने ? पापगमका सिद्धांत कहांसे आया ? और स्वप्न लेने
में बेचरदासने जो सांसारिक लाभको हेतु बतालाया है वहभी
कितनीक वेसमझ व्यक्तिओंके लिये समझना चाहिये, न कि तमाम
जैनसमाजके लिये ऐसा हो सकता है। इस तरहकी भावना
(सांसारिक लाभकी इच्छाकी भावना) तो कितनेक सामायिक
प्रतिक्रमण प्रभु पूजन करने वालोंमें भी अज्ञानताके कारणसे
हो जाती है, तो क्या उन सब धर्मक्रियाओंको भी त्याग देनी
चाहिये ? कदापि नही। 'जूओं के डरसे कपड़े कभी नहीं फेंके
जाते' किन्तु जूंएं दूर करनेका प्रयत्न किया जाता है। इसके वाद
पालना वगेरेके रिवाजको भी बेचरदासने पसंद नहीं किया है
यह भी उसके दुर्भाग्यका ही कारण समझना चाहिये क्यों कि-
तीनज्ञानके धारी भगवानकी दृष्टि हमेशह विना विनोदके निमित्त-
से भी विनोदमें रहती है तथापि उनकी दृष्टिके सामने चंदोएं
पर इन्द्र भक्तिके निमित्त श्री दामगंड लंबूसक लटकाता है यह
बात आवश्यकसूत्रतथा कल्पसूत्रसे प्रसिद्ध है। इसी तरह प्रभुकी
भक्ति निमित्त पालना बनाकर अपना अहो भाग्यमानकर स्थापनाकी
अपेक्षासे उस प्रभु पालनेकी दोरीको भक्तजन खींचते है। उसमें.

बेचरदासका दिल क्यों खींचाता है ? वह कहता है कि–' यह सब एक प्रकारका नाटक है इसे साधु क्यों नहीं हटाते । इसके जवाबमें मालूम हो कि यह फक्त नाटकही नहीं किन्तु मोक्षनगरका फाटकभी (दरवाजा) है । साधु ऐसे धर्म नाटकको कदापि नहीं हटा सकते । क्योंकि धर्म नाटकसेही नृपति रावणने तीर्थंङ्करगोत्र बांधा है । इस वातको अच्छी तरहसे जाननेवाला जैनसमाज इस धर्मक्रियाके नाटकसे कदापि नहीं हट सकता । हां जिसको नरकगोत्र बांधनाहो, वह इस अपूर्व प्रभुभक्तिमार्गसे हट जायतो कौन रोक सकता है ? बाकी ' वैष्णव जैसा ' इत्यादिभी उसका कहना ठीक नहीं है, क्योंकि वैष्णव दो पैसे धर्ममें खरचें तो श्रावक क्या न खरचे ? अगर वैष्णव उनके देवकी पूजा करें तो श्रावक अपने देवकी पूजा न करें ? अगर वैष्णव अपना वैष्णवी भावसूचक तिलक करें तो जैन जैनभावसूचक तिलक न करें ? अगर वैष्णव भक्ष्यभोजन करेंतो श्रावक न करें ! अगर वैष्णव दया पालेतो क्या श्रावक दया न पालें ? कदापि नहीं । हां जिस तरह वैष्णव सरागी देवको मानते है उसी तरह जैनोंको सरागी देवको मानना उचित नहीं है । पर क्या वीतराग देवकीभी भक्ति नहीं करनी चाहिये ? हा जैनसिद्धान्तबाधकरिवाज न होने चाहिये । क्या एक पालना झुलाया उसीमें वैष्णवपन आगया ? कदापि नहीं । स्वप्न उतारने पालना झुलाना आदि क्रियाएं प्रभुकी पुण्याईका फोटो है । उसे देखकर भक्तजनोंके दिलमें यह भाव आता हैकि–अहो, जिनदेव

कितने पुण्यवान् हैंकि जिनके गर्भमें आनेके समय माताको ऐसे मङ्गलमय सुपनोंका दर्शन हुवा। इतने पुण्यशाली होकरभी संसारके सुखोंको तृणवत् त्याग किया। और हम एक साधारणस्थितिवालेभी मोहपाशसे बद्ध हो रहेहैं यह हमारी कितनी गफलत है इत्यादि अनेक तरहकी भावनाका तथा भक्तिमार्गका पोषक यह रूढ़ि रिवाज है इसलिये किसी तरह पापका पोषक नहीं हो सकता परन्तु नास्तिक-जनोंके लिये ऐसाही हो, यह मैं प्रथम लिखही चुका हूं। जैसे एक बिल्लीको आदर्शभवनमें रखदो तो वह जिस तरफ देखे उस तरफ उसे बिल्लीएही बिल्लीएं मालूम होतीहैं, उसी तरह दुर्भाग्यवशसे **बेचरदास**को पापबंधनका कारण हुआ होगा और उससे उसने जान लिया होगाकि—सबके लिये ऐसाही होता होगा। परन्तु ऐसा कदापि नहीं होसकता।

बेचरदास—" उपधान नामनुं तप करती वखते माला पहेरवी पडे छे, हवे आ माला माटे दशके पंदरा रूपैया आपवा पडे छे, अफसोसनी वात ए छे के आ मालानी तेटली किम्मत होती नथी, तेम शास्त्रमां आवो आचार पण कोई स्थले उपदेशायो नथी, छतां मारी मातुश्रीए ज्यारे उपधान भावनगरमां कर्युं हतुं त्यारे शास्त्रविरुद्धनी आ रूढ़िने देवुं करीने पण पालवानी केटलाकोए फरज पाडी हती ". इत्यादि.

समालोचक—उपधानकी क्रियामें मालारोपणके समय जो

न्योंछावर लीजाती है वह जूदे २ गांवके सङ्घके ठहराव मूआफिक होती है, किसी गांवमें १० रूपया लिया जाता है तो किसी गांवमें पांचका रिवाज जारी करदें तोभी कौन मनाई करता है। यह तो एक देवद्रव्यकी वृद्धिके लिये श्रीसंघकी तरफका कायम किया हुवा रिवाज है। इस रिवाजको पुण्यशाली पुरुष बहुत भावसे स्वीकार करते हैं और कहते हैंकि अहोभाग्य एकतो तपश्चर्याका लाभ उठाया, और दूसरे दानकाभी लाभ मिला, जिससे एक सोना और दूसरी सुगन्ध जैसा हुआ। और जो दुर्भाग्य शिरोमणि होते हैं वेही धर्मादेका उत्तमोत्तम पदार्थ खाकरभी दश पंद्रह रूपया देनेमें मरणे जैसा मानते हैं। और जो भावसे देते हैं उनपरभी उनको द्वेष आता है। और **बेचरदास**का यह कहनाकि—मालाकी उतनी किम्मतही नहीं होती यहभी बुद्धिशून्य है, क्योंकि अगर इस तरह कहोगे तो फिर देवमंदिरमें आरती उतारनेका घी बोला जाता है वहांभी यह सवाल पेश होगाकि आरतीकी या उसमें भरे हुए घीकीभी क़ीमत उतनी नहीं होती जितना उसपर घी बोला जाता है। इसी तरह प्रभुको रथमें लेकर बैठनेमें या प्रभुको पधरानेमें हज़ारो रुपयोंकी बोलियां होती हैं तो वहांपरभी **बेचरदास** कह देगाकि मूर्तिकी इतनी क़ीमत नहीं होती जितने रूपैये बोलीमें दिये जाते हैं। अगर इस तरहका विचार करेंतो फिर सर्व विषयमें नास्तिकता हो जाती है। **बेचरदास** ! तुम धार्मिकभावनामें क़ीमत गिनते हो इससे तो तुह्मारी बुद्धिकीही क़ीमत हो जाती है। क्योंकि गुरुमहाराजसे एक वासक्षेप जैसी वस्तु

लेकर भक्तजन उस स्थानपर गीनीयोंकी वृष्टि कर देते हैं। बतुलाइये अब वासक्षेपकी क्या क़ीमत है? तुह्मारे हिसाबसे तो कुछभी क़ीमत नहीं परन्तु भाविक भक्तके लिये वही अमूल्य है। उपधानके विषयमेंभी ऐसेही समझना चाहिये। **बेचरदास**के मनमें तो माल्यका कुछ मूल्यही नहीं मालूम होता है। परन्तु भाविक भक्तके मनमेंतो यह शिवरमणी प्राप्त करनेकी योग्यतासूचक माला अमूल्यही प्रतीत होती है, और शास्त्रीयनियमसेभी एसाही होना चाहिये। हां? **बेचरदास** जैसे गरीब आदमीपर फर्ज पाडना ठीक नहीं: जिससेकि बिचारे **बेचरदास**को शिरपर ऋण करकेभी देने पड़ें परन्तु **बेचरदास**काभी फर्ज था कि **भावनगर**के श्रीसङ्घ (सेठियों) के सम्मुख हाथजोडकर अपनी गरीब हालतका प्रकाश करता। मेरे खयालसे **भावनगर**के दयालु शेठियोंके दिलमें अवश्य दया आती और **बेचरदास**को छोड देते। अफसोस है **बेचरदास**की अकलपर कि जिसनें पञ्च छ वर्षके बाद व्यर्थ पुकारकीकि जिससे कुछभी फल नहीं निकला। अगर उसीवख्त **भावनगर**के आगेवानोंको कह देतातो कुछ फलभी निकलता। अब सारी दुनियाको सुनानेसे क्या मतलब?। अस्तु, **बेचरदास!** अब शान्ति करो। और '**गतं न शोचामि**' इस वाक्यका मनन करो।

बेचरदास—' घणी वखते आठ अने चौद उपवासो करी सकनाराओ सारा खातामां आठ आना भरतां मरवा पड़े छे, हवे हूं तमने पुछुं छुं के द्रव्य परनो जेनों मोह उतर्यो नथी तेवा माणसनो

शरीर परनो मोह कदी उतरी शके? पहेली चोपड़ीमां पास थनार माणस सातमीनी परीक्षा कदी आपी शके? दानशील तप अने भावना ए प्रमाणे चार उत्तरोत्तर अधिक कोटिना धर्मना आचार छे, जे दान करी शके तेज शील पाली शके. अने तेज गृहस्थ तप पर आवी शके?" इत्यादि.

समालोचक—विना अधिकारके सूत्र पढ़नेसे **वेचरदास**की बुद्धि ऐसी बिगड़ गई है कि एक लोकप्रसिद्ध व्यवहारकोभी समझना मुश्किल हो गया है। क्या **वेचरदास**का यह कथन कदापि सत्य होसकता है कि जो दान देसके वही शील पालसके, और जो शील पाल सके वही तप कर सके, और जो तप कर सके वही भावना भासके! कदापि नहीं। यह तो एक प्रसिद्ध बात है कि बड़े बड़े धनाढ्यलोक हजारोंकाही नहीं किन्तु लाखों रुपयोंका दान कर सकते है परन्तु एक दिनके लिये भी मैथुनका त्याग या एक नवकारसीका पच्चक्खाण करनेमें भी समर्थ नहीं होसकते। इस विषयमें वहुतसे नरनारी उदाहरणरूप विद्यमान हैं तथापि समस्त जैनजातिमें प्रसिद्ध श्री **श्रेणिक तथा कृष्ण महाराज**का ही उदाहरण काफी है कि जिन्होंने लाखोंही नहीं बल्कि क्रोडों रुपैये धर्ममें खरच किये हैं परन्तु मैथुनत्याग तथा तपश्चर्या इनसे नहीं बन सकी, **बेचरदास**के अभिप्रायसे तो इन लोगोंमें भी शील तथा तपोगुण होना चाहिये था। क्योंकि जो दान देसके वही शील पाल-सके इत्यादि बातें सत्य होतीं तो पूर्वोक्त पुरुषोंमें शील तथा तपोगुण

अनुक्रमसे प्रकट होता, परन्तु ऐसा शास्त्रमें कहीं उल्लेख नहीं है, बतलाई अब उन्मत्त **बेचरदास**के बकवादको सत्य माने या सत्यशास्त्रनिरूपितावीधिवादको ? कहना ही पड़ेगा कि, सत्यशास्त्र निरूपित विधिवादकोही सत्य मानना चाहिये। **बेचरदास** ! तुमको इस विषयका लेशमात्रभी ज्ञान होता तो तुम ऐसा कभी नहीं लिखते कि जो दान देसके वही शील पाल सके वही तप कर सके इत्यादि, क्योंकि तुमने यह उत्सूत्र प्ररूपणा की है अगर नहीं तो फिर बतलाईये, यह विरुद्धतर्क किस आगमशास्त्रमेंसे ढूंढ निकाली है ? सिवाय गप्पपुराणके और कहींसेभी यह निराली दलील नहीं निकल सकती, जिसको दानांतरायके उदयकी तीव्रता हो वह दान नहीं देसकता है किन्तु वीर्यान्तरायके क्षयोपशम और क्षुधावेदनीयकी मंदतासे तपश्चर्या खुशीसे कर सकता है। और पुरुषवेदनीय नामकी मोहप्रकृतीके क्षयोपशमसे शील तो पाल सकता है, परन्तु दानान्तराय और वीर्यान्तरायके तीव्रोदयसे दान देना और तप करना नहीं बन सकता। कितनेक लोग प्रथमके तीन (दान शील तपः) के बगेरे ही भावना भा सकते हैं जैसे श्रीबलभद्र-मुनिमहाराजकी बनमें सेवा करने वाला हिरण दान शील और तपोगुणके वगैर ही भावना भाकर पञ्चमदेवलोकको प्राप्त हुआ। क्योंकि अध्यवसायकी विशुद्धि पर भावनाका दारोमदार (आधार) है। मतलब यह है कि—**बेचरदास**को जैनकर्म्मसिद्धांतका ज्ञान न होनसे भैसका स्वरूप भैंसे (पाड़े) में समझ कर दूध की आशापूर्त्तिके लिये

भैंसे को दुहने जैसा काम किया है। मतलब कि भ्रान्ति सहित पुरुषकी भैंसेमें दुग्धाशाकी प्रवृत्तिमें दूध मिलना तो दूर रहा परन्तु भैंसेकी लातोंसे शिर फुटनेका भी संभव है। इसी तरह **बेचरदास**को भी इस असत्य कल्पनासे इष्टफलरूप दूध मिलना तो दूर रहा परन्तु दुःखरूप भैंसेकी अनेकानेक अनिष्टलातोंसे एकही जन्मके लिये नहीं किन्तु जन्म जन्मके लिये उसके सिर फुटनेका संभव है, इस लिये **बेचरदास**को उचित है कि, ऐसी शास्त्रविरुद्ध कल्पनाओंका त्यागकरके ईसी शुद्धश्रद्धाको ग्रहण करले कि दान देनेकी शक्तिके होनेपर या न होने पर भी शील पालनकरनेकी शक्ति हो सकती है और शीलपालनकी शक्तिके बगैर तपशक्ति हो सकती है। और शील तथा तप शक्तिसे रहित भी दान दे सकते हैं। इस श्रद्धाके कायम करनेसे स्वयं नष्ट होनेसे बचजावें और दूसरोंको भी नष्ट करनेकी बेवकूफीसेभी बचनेका **बेचरदास**-को मार्ग मिल सकता है।

बेचरदास—" अमुक एक चीज़ करवीज अने अमुक चीज नाज थई शके एवुं एकदेशीय फरमान आगमोमां कोई ठेकाणे नथी. खुद महावीर प्रभुए पोते क्रियाउद्धार कर्यो हतो. इत्यादि ".

समालोचक—वाह ! वाह ! यहां आकर तो **बेचरदास**ने रग २ में घुसी गई जहालतको बाहर निकालदी ! बेवकुफीकीभी कुछ हद है ? **बेचरदास**ने झट कह दियाकि—" अमुक चीज करवीज

अने अमुक चीज नाज थई शके एवुं एकदेशीय फरमान आगमोमां कोई ठेकाणे नथी ". परन्तु यह नहीं विचार कियाकि–गुरुगम विना मेरेको आगमका भावही मालूम नहीं हुवा, क्योंकि ऐसा कदापि नहीं बन सकताकि सब बातोंमें एकदेशीय फरमान नहीं है ऐसा कहकर काम चलालें। सब विषयोंमें इस वाक्यको पेश करना मूर्खताकाही लक्षण है। अगर एकदेशीय फरमान नहीं है, तो क्या जो जैनवर्ग वीतराग प्रभुके चरणोंका सेवन कर रहा है, उसे सरागी ब्रह्मा विष्णु महेश आदि देवोंके चरणोंका सेवनभी करना योग्य है? क्या महाव्रतधारी गुरुओंको माननेवाले जैनोंको भांग धतूरे खानेवाले परिग्रहधारी, व्यभिचारकर्ममें अहर्निश मग्न रहनेवाले सम्यक्त्व रहित कुगुरुओंकोभी मानना चाहिये? क्या दयामयधर्मको छोड़कर पशुवधविधायक हिंसाधर्मकोभी मानना चाहिये? रमणीविरतसाधुजनोंको क्या रमणीसङ्गमें प्रवृत्त होना चाहिये? साधुओंको निर्दोषवृत्तिकी भिक्षाको त्यागकर चुल्हा जलाकर भोजन करना चाहिये? क्या उष्णोदकके पान करनेवाले साधुओंको कच्चे जलका पानभी करना चाहिये? क्या वनस्पतिके अनासेवी मुनियोंको फलफूलका उपभोगभी करना चाहिये? क्या मांस मदिराके त्यागी और स्वदारासंतोषी गृहस्थको मांसभक्षण, मदिरापान, परस्त्रीगमन और वेश्यागमनभी करना चाहिये? नहीं नहीं धीरपुरुष प्राण चले जाने परभी ऐसे नीच कर्म्मोंको कदापि नहीं करते। और शास्त्रकाभी ऐसाही उपदेश हैकि—

" प्राणान्तेऽपि न मोक्तव्यं, गुरुशाक्षीधृतं व्रतम् ।
व्रतभंगो हि दुःखाय, प्राणिन् ! जन्मनि जन्मनि ".

बस इससे साबित होता हैकि वेचरदासका पूर्वोक्त कथन शास्त्र-आधार रहितही नहीं किन्तु बकवादरूप है, क्योंकि अपने त्यागके और सम्यक्त्वके सिद्धांतकोभी बदलनेकी आज्ञा सिद्धान्त कदापि नहीं देसकते । अगर वेचरदासके कथनपर जैनसमाज चले तब तो सारा जैनसिद्धान्तही पलट जाय, क्या अनेकांतशैलीभी एकान्त रूपमें बदल सकती है ? कहनाही होगाकि कदापि नहीं । अगर हमारे पाठक कहेंगेकि—ऐसाही है तो फिर वेचरदासने ऐसा क्यों कहा तो उसके जवाबमें मालूमहोकि वेचरदासने अधिकार वगैर शास्त्र पढ़ेहैं, इससे उसकी बुद्धि ऐसी तो भ्रष्टहो गई हैकि इसको मालूम नहीं पड़ताकि, ' अमुक वातको अमुक रीतिसे कथन करनेमें जैनशैली रहती हैं या लुप्त हो जाती है, यही कारण हैकि इसके भाषणसे सारे जैनसमाजमें खलभलाट मच गया है । इसके वाद वेचरदासका यह कहनाकि, ' प्रभु महावीर स्वामीनेभी क्रिया उद्धार किया था ' ऐसा है जैसे वेचरदास कहे कि, ' मेरे शिरपर सींग है या मेरे मुंहमें जीभ नहीं है या मेरी माता वांझणी है, जैसे इन शब्दोंमें परस्पर विरोध है ऐसेही तीर्थङ्कर प्रभु और क्रिया उद्धार शब्दमें परस्पर विरोध है । जो साधुलोग अपने आचरणोंसे ढीले हो गये हों उनमेंसे कितनेक उत्तम व्यक्ति फिर उत्कृष्टाचरणोंको धारण करने लगें उसका नाम क्रिया उद्धार है । अब विचार करोकि ऐसे अर्थ

वाले क्रियाउद्धारशब्दको प्रभुके साथ लगाना कितनी अधमताकी निशानी है। समस्तजैनसमाजको याद रखना चाहियेकि बेचरदासपर मिथ्याशल्यका बड़ा भारी बुरा असर छाया हुआ है, इसलिये इसके वचनशल्यसे बचे रहना जो तुम्हारे हृदयमें अगर उसका वचनशल्य घुस गयातो मिथ्यात्वशल्यके मारे अनन्तभवों तक रुलना पडेगा।

तटस्थ—मिथ्यात्वशल्यको किसी उदाहरणसे घटाकर बतलाइये और उस शल्यके होनेसे कैसी दुर्दशा होती है सो बतलाइए।

समालोचक—देखिए! मिथ्यात्वशल्य किस तरह दुःखदाई होता है उसका एक दृष्टांतद्वारा फोटो खींचता हूं। किसी आदमीके पास प्रथम बहुत धनथा, परन्तु पीछेसे भाग्यने पल्टा खाया और आहिस्ता २ सब धन नष्ट होगया, मात्र पांचसौ रूपये उसके पास बाकी रहगये थे, तब उसने विचार किया कि विदेशमें जाकर कुछ अपूर्वचीज खरीद लाऊं जिसको देशमें बेचनेसे अच्छा नफा रहे, वह दुर्भागी मनुष्य जिस देशमें रहताथा. उस देशमें कोल्हा फल नहीं होता था, और खरगोश (ससा) भी नहीं होता था, तदनन्तर वह विदेशमें गया और देखा तो किसी एक नगरके शाकबाजारमें एक आदमी कोल्हे बेच रहाथा। उसको उसने प्रथम अपनी बात सुनादी कि ' मुझे पांचसौ रूपयेका ऐसा माल खरीदना है कि जिसकोमैं अपने देशमें बेचूं तो दूना दाम पैदा

हो, उसकी बातको सुनकर वह शाकबेचनेवाला समझ गया कि यह कोई बेवकूफ आदमीहै इसको अच्छी तरहसे ठगें, ऐसा विचार करके बहुत मीठे शब्दोंमे उस दुर्भाग्यके साथ बात चीत करनी शुरू की। वह दुर्भागी उसे अपना मित्र समझने लगा. थोड़ीसी बात चित चलनेके बाद उस अभागीने उससे प्रश्न किया कि इस टोकरीमें क्या है ? उसने कहा ये घोड़के अण्डे हैं। जब उस मूर्ख-ने कीमत पूछी तब उस धूर्तने सातसौ रूपयेकी कीमत बतलाई। वह विदेशी चौंककर पूछता है कि हैं इतनी कीमत क्यों ? शाक वालेने उत्तर दिया कि इस अण्डेमेंसे घोडा निकलेगा। तब वह एक हज़ार रूपयोंका होगा और दोचार महिने इसको माल मसाला खिलानेमें आवेगा तो चौदह सौकी कीमतका भी हो जाएगा। इस बातको सुनकर उस विदेशीका मन उसे खरीदनेका हुआ परन्तु उसके पास रुपये मात्र पांचसौ ही थे। इस लिये चित्त घब-राता था। अन्तमें बड़ी अधीरतासे उसने कहाकि—मेरा दिल इस चीजको ले जानेका है परन्तु क्या करुं ? मेरे पास पांचसौ रूपये ही हैं उस साक वालेने कहा कि आप हमारे मित्र बनगए हो तो आपका भला करना हमारा फरज है. इस लिये और से सात सौ रूपये लेताहूं परन्तु अब आपसे पांच सौ ही लूंगा। इस बातके सुननेसे उस दुर्भागीकी खुशीका पार ही न रहा और झट पांच सौ रूपये देकर उस कोल्हेको घोड़का अण्डा समझ कर खरीद लिया। तब उस धूर्त्त शाकवालेने कहा कि देखना! इसको

ज़मीनकी या दूसरी चीजकी ठोकर न लगे ऐसे रखना, अगर कच्चा फुट जायगा तो सिवाय छोटे २ बीजके और कुछ नहीं निकलेगा, इस लिये अच्छी तरहसे इसकी रक्षा करना। कितनेक कालके बाद उसमेंसे स्वयं घोड़ा निकलेगा। अब वह दुर्भागी उस कोल्हेको लेकर अपने देशकी तरफ लोटा। एक दिन किसी वनमें रसोई करने लगा तब वृक्षपर चढ़ कर जिस कपड़ेसे अपनी जानकी तरह कोल्हेको बचा रहा था, एकवृक्षकी मजबूतडालीसे उस कपड़ेकी गांठ लगा कर उस कोल्हेको लटकाया गया उसके नीचे ऐसी घनी झाड़ी थी, जिसमें अगर कोल्हा गिर जाय तो पता लगाना भी मुश्किल हो जाय। दैवयोगसे ढीली दी हुई गांठ खिसक गई और कोल्हा उस झाडीमें गिर गया। उसके पतनशब्दसे भड़क कर उस झाडीमें रहा हुवा एक खरगोश (ससा) निकल कर दूसरी तरफ भागता हुआ उस दुर्भागीने देखा और उसके पीछे दोड़ने लगा। परन्तु खरगोशकी दौड़के आगे उसकी दोड़ ही क्या थी जिससे वह पहुंच सके। अब वह मूढ विचार करने लगा कि हाय! हाय! यह कच्चे अंडेसे निकला हूवा छोटासा घोड़ा भी इतनी तेज चालसे दौडता है अगर परिपक्वदशाको प्राप्त हुए अण्डेसे इसका जन्म होता तो न मालूम किस हवाई चालसे चलता। और बेशक मेरे मित्रके कथनानुसार चौदहसौ तो क्या लेकिन दो हज़ार रूपयोंमें खरीदने वाले भी हज़ारों ग्राहक मिलते। परन्तु हाय! मेरा उतना भाग्य कहां! जो वह फल

मुझको मिले ! । अस्तु अब मैं इसे जंगलमेंसे ढूंढ निकालूं कहीं न कहींसे वह छोटा घोड़ा हाथमें आजायगा तो उसे खिला पिला कर मैं बड़ा बनालूंगा, और मेरा मनोरथ पूर्ण हो जायगा । इस विचारसे वह मूर्ख सारे जंगलमें भटकता फिरता है । कोई उसकी वार्त्ताको सुनकर सत्यस्वरूप पालेता है तो उसे समझाता है कि, अरे मूर्ख तूने किसी धूर्त्तसे ठगा कर पांचसौ रूपयोंमें सिर्फ आठ आनेकी कीमत वाला कोल्हा ही लिया होगा, और जिसे तूं घोड़ा समझता है वह खरगोश होना चाहिये, नाहक में जङ्गलमें भटक २ कर क्यों मरता है इत्यादि अनेक प्रकारसे समझाने पर भी वह उस कोल्हेको घोड़ेका अण्डा और खरगोशको घोड़ा ही समझता रहा । और कहनेवालेको असत्य वक्ता मानता रहा । और सारी उमर जंगलमें ही भटक २ कर मर गया । प्रिय पाठकों ! जैसे उस मूढके मनमें शल्य भर गया जिससे कोल्हाको अण्डा और ससेकों घोड़ा मान लिया, और सत्यवादी जनोंको असत्यवादी और शाक बेचनेवाले उस असत्यवादी ठगको सत्यवादी समझता रहा । जिससे सारी उमरके लिये दुःखी बन गया. बस इसी तरह जिसके हृदयमें मिथ्यात्वशल्य भर गयाहो उसकीभी ऐसीही दशा होती है ॥ अब उसका उपनय बेचरदासके साथ घटानेवालोंको उस दुर्भागी जीवके स्थानपर बेचरदासको समझना चाहिए । और प्रथमकी धनाढ्य अवस्थाके स्थानपर आर्यदेश उत्तमकुल पञ्चेन्द्रियकी संपूर्णता, शारीरिक बल, लम्बा आयुः, बुद्धि, वगैरा पदार्थोंकी

प्राप्तिको समझना, और पीछेसे श्रद्धाभ्रष्ट होकर उस सामग्रीको निष्फल करदी उसका नाम दरिद्रावस्था समझें सहजसाज रही हुई श्रद्धाको पांचसौ रुपये समझना, और उसके मगजमें उत्पन्न हुआ हुआ मिथ्याविचार हैं उसे शाक बेचनेवाला ठग समझना, उसकी सोहबतसे रही हुई श्रद्धाकोभी खोकर 'तमस्तरण' लेखकी शक्तिरूप कोल्हेको घोड़के अण्डेके स्थानपर समझना, इससे मनोरथ-रूप घोड़ा पैदा करना था सो न हुआ, इसे कोल्हेका गिरजाना समझना, 'देवद्रव्यका भक्षण करके दुनिया संसारसागरमें डूब जावे, और साधुलोगोंसे लोगोंकी प्रीति घटे, और प्रभावक पूर्वाचार्योंसे जन-समाजका मन फिर जाय, इत्यादि विषयके सिद्ध करनेके लिये भाषण देकर 'मेरे भाषणका जनसमूहमें कुछ असर होगा' ऐसी जो उसकी आशा है उसे खरगोशके पीछे भागना समझना, आस्तिकजनोंकी तरफसे उसके असत्य भाषणका समाधान करना उसे सत्यवादिओंका उपदेश समझना, अगर सत्यवादियोंके किये हुए समाधानसे समझकर श्रीसङ्घसे माफी मांगले तो **बेचरदास** इस रूपकसे इस विषयमें भिन्न होजाय, और इस विषयमें भिन्न होजाय तोभी जैसे उस आदमीको भटक २ कर मरना पड़ा ऐसा उसके लिये नहीं बन सके। अगर इतने शास्त्रीयप्रमाण देनेपरभी **बेचरदास** अपने दुराग्र-हसे नहीं हटेगा तो उस आदमीसेभी अनन्तगुण विशेष दुःखका भागी होजायगा। क्योंकि वह दुर्भागी तो एक जन्मके लिये भटक भटक कर मरा परन्तु **बेचरदासके** लियेतो अनन्तजन्मोंमें भटक

भटक कर मरनेपरभी निस्तार होना कठिन होजायगा। प्रिय पाठको! यह याद रखनाकि अगर बेचरदासकी अंदर घूसा हुआ मिथ्यात्वरूप भयंकर रोग अगर न निकले तो इससे तुमको ऐसा दूर रहना चाहिये जैसे भयंकर प्लेगसे जीनेकी आशावाले दूर रहते हैं। एक जन्मके जीवनको बचानेके लिये प्लेगिओंसे दूर रहा जाता हैतो फिर भवोभवके जीवनकी रक्षाके लिये बेचरदास नामक भावप्लेगीसेभी हमेशह दूर रहना तुह्मारा कर्तव्य है। अब मैं अंतमें इतनाही कहता हूंकि मेरा यह समस्त लेखमात्र लोगोंके तथा बेचरदासके भलेके लिये है. लोगोंका भला तो यूं हैकि कितनेक अज्ञानी लोग बेचरदासके वचनपर विश्वास लाकर उसकी झूठी मनःकल्पनाको सत्य मानकर उसके कथनानुसार प्रवृत्ति करेंतो अपारसंसारसमुद्रमें अनन्त कालतक डूब जावें उनके उस दुःखसे त्रासित होकर यह लेख लिखनेमें आयाहै, और बेचरदासके लिये यह भलाई हैकि अगर वह इस लेखसे कोई रीतिसेभी समझकर परमपूज्य श्रीसङ्घके सामने माफी मांगलेकि—हाय! मैं बड़ा मूर्ख हूंकि मैने विना विचार किए जैनधर्मसे विरुद्ध देवद्रव्यादिके विषयमें कथन किया है, और उस कथनको तमस्तरण नामक लेखसे 'एक करेला और दूसरे निम्ब चढ़ा' जैसा किया है। और मेरे प्राचीनपूर्णपापोदयसे परम प्रभावक आचार्योंकी निन्दा करते समय मैने अपने दिलमें जराभी डर नहीं रक्खा है, इस अधमकर्त्तव्यका मुझको पूर्ण पश्चाताप है, अतः मेरे शिरश्छत्ररूप पवित्र श्रीसंघ इस विषयमें जो मेरी भूल

हो गई है उसकी क्षमा करेंगे ! मैं अवश्य गीतार्थगुरुओंकी पास इस विषयका प्रायश्चित लेकर अपनी आत्माकी शुद्धि करना चाहता हूं । ऐसा उसके दिलमें नरक निगोदोंके भयंकर दुःखोंसे डरकर विचार उत्पन्न हो और अपना कल्याण करे, मात्र इस पवित्र अभिप्रायसे यह लेख लिखनेमें आया है । मेरा बेचरदासके साथ लेशमात्र भी द्वेषभाव नहीं है । मात्र कोई रीतिसे भी उसकी आत्माका भला हो और मिथ्याजालमें न फंसे । यद्यपि जनरुचि मिष्टवाक्यश्रवणमें प्रवृत्ति होती है तथापि उसके बहुत अंशमें हित नहीं रहता, और जो हितवाक्य होते हैं उनमें यद्यपि कटुकता होती है तथापि भावी शुभोदयका कारण है । जैसे ज्वरवालेको मिश्रीका शरद जल मिष्ट लगता है तथापि रोगवृद्धिका कारण होनेसे अनिष्ट है, और क्काथ (कावा) कटुक लगता है तथापि ज्वररोगको दूर करनेमें कारण होनेसे हितकर्त्ता माना जाता है । बस इसी तरह मेरे इस लेखको कटुकक्काथवत् समझकर पाठक जन तथा बेचरदास अपने हितके लिये पान करेंगे । और पान करके मेरे इस परिश्रमको सफल करेंगे ऐसी आशा रखता हूं ।
ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ।

प्रशस्तिः ।

दुग्धाम्भोनिधिना च रौप्यकलशेनेशक्षितिध्रेण च
दिङ्नागैः सितपक्षिभिश्च शशिना साकं सदा स्पर्द्धते ।
कीर्त्तिर्यस्य मुनीश्वरस्य विमला विश्वे स्वशुभ्रत्वतो
जज्ञे विश्वगुणाकरोऽत्र **विजयानन्दाऽभिधः** सूरिराट् ॥ १ ॥

समुद्रं गम्भीर्यात्तरणिमपि तेजोभिरनघै
र्हिमांशुं वाकूछैत्याद्विमलधिषणातः सुरगुरुम् ।
यशोभि र्दिङ्नागान् व्यजयत मरालं च गतिना
ततः पट्टेऽस्य **श्रीविजयकमलाचार्य** उदितः ॥ २ ॥

धीमांस्तत्पदपद्मयुग्ममधुलिड् वादीभकण्ठीरवो
नानाशास्त्रसमुद्रमन्थनहरि र्विज्ञानिचूडामणिः ।
विख्यातो भुवनेऽत्र **लब्धिविजयो** व्याख्यानवाचस्पति
रास्ते ध्वस्ततमा गुणी मुनिपती रन्ता गुणाब्धौ सताम् ॥ ३ ॥

तेन बेचरशिक्षार्थं, लोकानामुपकारकम् ।
रहस्यं सर्वसिद्धान्त-ततेर्लात्वा विनिर्ममे ॥ ४ ॥

पुस्तकमेतच्छ्री देवद्रव्यादिसिद्धिसाधकम् ।
सुसार्थमिव लोकानां, मिथ्यात्वारण्यपातिनाम् ॥ ५ ॥

जैनपत्राधिपाद्या ये, मिथ्यात्वमालिनाशयाः ।
तेषामप्यत्र सच्छिक्षां, ददे तद्धितकारिणीम् ॥ ६ ॥

भाषाया अस्ति काठिन्यं, केऽप्यत्र ब्रुवते नराः ।
ते नूनं जैनराद्धान्त—शुद्धशिक्षाबहिर्मुखाः ॥ ७ ॥

यैः श्रीविवाहप्रज्ञप्ति—द्वादशकुलकादिकम् ।
दृष्टं तेषां कदापीत्थं, नैव स्यान्मानसे भ्रमः ॥ ८ ॥

षट्सप्ताङ्केन्दु वर्षे गतवति सरसे विक्रमादित्यराज्यात्
दर्भावत्यां नगर्यां व्यरचयदिदकं गिष्पतिर्लब्धिनामा
देवद्रव्यादिसिद्ध्याख्यकमिदमनिशं पुस्तकं वाच्यमानं
भव्यैर्जीयाज्जनानां सततमुपकृतेः कारकं साधुवृत्तेः । ॥ ९ ॥

इति श्रीमत्तपगणगगनाङ्गणदिनमणिन्यायाम्भोनिधिजैनाचार्यश्रीमद्वि-जयानन्दसूरीश्वराऽपरनामश्रीमदात्मारामजीमहाराजपट्टश्रीशृङ्गारहार श्रीमद्विजयकमलसूरिपुरन्दरचरणारविन्दचञ्चरीकजैनरत्नव्याख्यानवा-चस्पति श्रीमल्लब्धिविजयमुनिपुङ्गवविरचितः श्रीदेवद्रव्यादिसिद्धि नामायं ग्रन्थः समाप्तः ॥
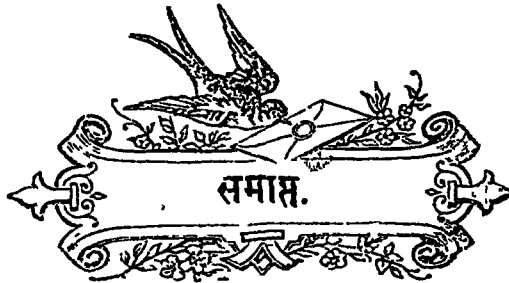
દેવ દ્રવ્ય.

વકતા—પંડીત બેચરદાસ—મુંબાઇ.

લગભગ ત્રણ માસ ઉપર પંડિત બેહુચરદાસ જીવરાજે મુંબઇની માંગરોળ જૈન સભાના હોલમાં દેવદ્રવ્ય વિષે એક જાહેર ભાષણ આપ્યું હતું. પ્રમુખસ્થાન મી. મોતીચંદ ગીરધર કાપડીયા સોલીસીટરે સ્વીકાર્યું હતું. આ ભાષણનો કેટલોક ભાગ અમારા વાંચકોની જાણ માટે નીચે પ્રસિદ્ધ કરીએ છીએ.

દેવદ્રવ્ય શબ્દજ કાંઇક અસંબધ્ધ અને વિચિત્ર છે. જૈનો જેને દેવ તરીકે સ્વીકારે છે તે રાગ–દ્વેષ–ધન–સ્ત્રી વિગેરેથી મુકત, દરેક કષાયથી રહિત હોય છે. હવે રાગ–દ્વેષ વિનાના પ્રભુનું દ્રવ્ય શી રીતે સંભવી શકે ? આ કારણથી મને જીજ્ઞાસા ઉત્પન્ન થઇ, અને મૂલ જૈન આગમોમાં આ દેવદ્રવ્ય શબ્દ છે કે કેમ તે તપાસવાનો મેં નિશ્ચય કર્યો. જૈનશાસ્ત્રો મૂળની બારીક તપાસ પછી મને જણાયું કે, આ 'દેવદ્રવ્ય' નો પ્રયોગ મૂળમાં કોઇજ ઠેકાણે નથી. પરંતુ આ શબ્દ તાંત્રીક યુગમાં આપણા કેટલાક સાધુઓએ દાખલ કીધો છે. આ શબ્દો દાખલ કરવામાં સાધુઓનો શું મતલબ હશે તે બાબત તપાસવાની મને જીજ્ઞાસા થઇ, અને તપાસ કરતાં જણાયું કે, જ્યારે વિષમકાળ શરૂ થયો, અને આગમોમાં સાધુઓ માટે જે અતિ ઉચ્ચ કોટીનો આચાર અને ત્યાગ વર્ણવ્યો હતો, તે જ્યારે સાધુઓ માટે કાળસ્વભાવથી પાળવો અશકય થઇ પડયો, જ્યારે સાધુઓએ ઉદ્યાનો અને જંગલોમાંજ રહી આત્મામાં મસ્ત રહેવાનું

માંડી વાળ્યું, અને તેઓ વસ્તીમાં આવવા લાગ્યા અને આહારાદીની ઉપાધીઓના યોગે તેઓએ શ્રાવકોને, દેવોને આ ચઢાવવું, આ પહેરાવવું, આ લટકાવવું વિગેરે મારગો ફકત પોતાના સ્વાર્થના સંતોષ માટે ઉપદેશ્યા અને આ ઉપદેશના સમર્થનમાં કેટલાએક સાધુઓએ આ યુગમાં એવા સંસ્કૃત ગ્રંથો લખી નાખ્યા છે કે, જેમાં દેવદ્રવ્ય વધારવામાં મહા પુણ્ય અને દેવદ્રવ્યને નુકશાન કરવામાં મહા પાપ જણાવવામાં આવ્યું છે. પરંતુ મારે તમને ફરી જણાવી દેવું જોઇએ કે મૂળ શાસ્ત્રમાં આ શબ્દ કોઈ ઠેકાણે નથી ને આ દ્રવ્ય ઉકત પ્રમાણે અસ્તિત્વમાં આવ્યું છે. ખરી વાત એ છે કે, દેવદ્રવ્ય એ શાસ્ત્રના ટેકાવાળું દ્રવ્ય નથી, આ દ્રવ્ય જેને આપણે દેવદ્રવ્ય તરીકે ગણીએ છીએ. તે રાગ–દ્વેષથી રહિત એવા પ્રભુનું છેજ નહિ. દ્રવ્ય કાંઈ પ્રભુ કમાવા ગયા નહોતા, અને પ્રભુ વિતરાગ હોવાથી તેઓને તેની જરૂર પણ હોતી નથી. આ દ્રવ્ય છેજ જૈન સંઘનું અને આ નાણાં જૈન સમાજના ઉપયોગી કાર્યમાં ન વાપરી શકાય, એવો શાસ્ત્ર તરફનો કોઈપણ વાંધો આગમોમાં છેજ નહિ. આગમોના મારા અભ્યાસપરથી હું તમને ખાત્રી આપીશ કે, આવા દ્રવ્યનો સ્વીકાર પણ ત્યાં નથી. હું તેથી આગેવાનોને પછી તે સાધુઓ હોય કે શ્રાવક હોય, દરેકને આ બાબંતપર, આ શબ્દો ઉપર ધ્યાન આપવાની અરજ કરૂં છું. કારણ કે, ઘણા લાંબા સમયથી એવી જે માન્યતા છે કે, દેવદ્રવ્ય એ તો શાસ્ત્રના આધારથી છે તે માન્યતા તદન ખોટી છે. આ દેવદ્રવ્ય શાસ્ત્ર વિરૂદ્ધ છે, એમ હું છાતી ઠોકીને કહું છું.

હવે હું ભૂતકાળમાં આપણા દેહરાઓની કેવી સ્થિતિ હતી. તે બાબત અજવાળું પાડીશ, અસલ બધા દેહરાઓ જંગલો અને

ડુંગરોપર હતાં. આ દેહરાંઓ હાલ જેમ પૈસાથી ઉભરાઇ ગએલાં હોય છે, તેમ તે વખતે નહોતાં, એટલે કે આ દેહરાંઓ ત્યાં સુધી જોખમ વીનાના હતાં; દેહરાંઓને દરવાજાઓ તો હતાજ નહિ, ચૈત્ય શબ્દનો અર્થ વૃક્ષ તથા બીજા અનેક થાય છે. પરંતુ ચૈત્ય શબ્દનો શબ્દાર્થ એ છે કે "મરણ પામેલા સંત મંહતની યાદગીરીનું તેજ સ્થળે ઉભું કરવામાં આવેલું સ્મારક." હવે અસલ સંત મહંતોની વીહારભુમિ જંગલો અને ઉદ્યાનો હતી અને તેઓ ત્યાંજ કાલ ધર્મ પામતા અને તેથીજ જંગલો અને ઉદ્યાનોમાં આવા સ્મારકો તરીકે ત્યાંજ ચૈત્યો બંધાતાં હતાં. જેઓને ધર્મની, આત્મ કલ્યાણની અતિ તીવ્ર ઇચ્છા હોય તેવા અધિકારીઓજ, દુર એવા આ ચૈત્યોમાં જઇ, ત્યાં આત્મસિદ્ધિનો માર્ગ સંશોધતા હતા. ઉદ્યાનોના આ દેહરાંઓમાં મુર્તિઓ શિવાય કાંઇપણ નહોતું, અને ચોરાદિની ધાસ્તી નહોતી, તેમજ મોહક એવાં વસ્ત્રો, દાગીનાઓ વીગેરે હતાજ નહિ. આ બધી ભપકાની મોહક ચીજો, જે દેવલોમાં હાલ દૃશ્ય થાય છે તે અસલ હતીજ નહિ. શાસ્ત્રના મૂળમાં પણ એવો કોઇ ઠેકાણે ઉપદેશ નથી કે પ્રભુની મુર્તિઓને શોભાવવી કે દાગીના ચઢાવવા. પરંતુ આ શરૂઆત, બીજી શરૂઆતોની માફક તાંત્રિક યુગમાં શરૂ થઇ છે. આ શરૂઆત માટે જોખમદાર અને જવાબદાર સાધુ વર્ગ છે, કે જેઓ પોતાની અનુકુલતાની ખાતર શાસ્ત્રના નીયમો તરફ તદન્ આંખ મીંચામણા કરતા હતા.

અસલ દેહરાઓમાં મુર્તિઓ બધી પદ્માસનવાળીજ હતી. કંદોરાવાળી મૂર્તિઓ જેમ હતી નહિ તેમ નગ્ન મૂર્તિઓ પણ હતી નહિ. પાછલથી જ્યારે શ્વેતાંબરો અને દીગંબરો એવા બે પક્ષ પડયા, ત્યારે તેઓએ સઘળી મૂર્તીઓ વહેચી લેવા માંડી. પાછલથી

તે મૂર્તિઓ, એક બીજાની ઓળખાય તે માટે હાલ જે નીશાનીઓ છે તે લગાડવામાં આવી છે. અસલ મૂર્તીઓમાં આવી નીશાનીઓજ નહી હતી.

હવે એક અજાયબભરી ચીજ જે મારે તમોને જણાવવાની છે કે મૂળ આગમો એ જૈન ધર્મના તત્વજ્ઞાનનો દરીઓ છે. જૈન સાહિત્ય, જે પાછળથી લખાયું છે, તેમાં અને મૂળ જૈન આગમોમાં એટલો બધો ફરક છે કે, હાલના સાહીત્ય પરથી જૈનધર્મની તદનજ ગેરસમજુતી ઉભી થાય, જૈનધર્મનું સર્વોતમ અને પ્રથમ પંક્તિનું સાહિત્ય જૈન આગમો છે, અસલ જૈનધર્મના અદ્વિતીય તત્વોનું સત્ય સ્વરૂપ ત્યાંજ પ્રતિપાદિત થયેલું છે કમનસીબે હાલમાં સાધુઓ એમ કહે છે કે આ આગમો શ્રાવકો વાંચી શકે નહિ. યાદ રાખો કે શ્રાવકો આ આગમો હાલમાં સાંભળી શકે છે અને તે સામે સાધુઓનો વાંધો નથી. બલ્કે સાધુઓ પોતેજ સંભળાવે છે, પરંતુ આગમો શ્રાવકો વાંચે તો તેઓ વાંધો કહાડે છે અને તેનું કારણ તેઓ એવું જણાવે છે કે અધિકાર વીના ન વાંચી શકાય. હવે અધિકારી અને અનધીકારીની અમુક આકૃતી હોતી નથી કે તે પારખી શકાય. સાધુઓની આ વાત શાસ્ત્રસંમત છે કે નહિ તે જરી હું તમને કહું. આગમોમાં કોઇ ઠેકાણે એવો શબ્દ નથી કે જ્યાં એવું જણાવ્યું હોય, કે શ્રાવકો આગમો વાંચે તેમાં પાપ હોય! ત્યારે આ ગપ–જે તદનજ શાસ્ત્રવિરૂદ્ધ છે, તે શા માટે મારવામાં આવી હશે? એનું કારણ એ છે કે મેં તમોને જણાવ્યું છે કે સાધુઓના માટે જે ખરો આચાર અને સર્વોત્તમ ત્યાગ આગમોમાં પ્રતિપાદન થએલો છે તે અદશ્ય થઇ ગયો. તાંત્રીક યુગના સાધુઓનું ચારિત્ર, એટલું શિથિલ થઇ ગયું કે, તેઓને એવું લાગ્યું કે જો શ્રાવકો

ખરા સાધુઓ કેવા હોય, તે બાબત આગમોમાં જોશે તો આપણા જેવા શીથિલ ચારીત્ર વાળાને ઉભાજ નહિ રાખે, અને આપણને કદાચ સાધુ તરીકે કબુલશે પણ નહિ. આ કારણથી યુકિત વાદમાં પ્રવીણ એવા સાધુઓએ, આ ફરમાન બહાર પાડયું કે શ્રાવકો આગમો વાંચી શકે નહિ. જો કે વિશેષ આવશ્યક સુત્રમાં તો ખુલ્લું જણાવવામાં આવ્યું છે કે આગમો પ્રાકૃત ભાષામાંજ લખવાનું કારણ એ કે બધાઓ–બાલકો, મુરખો અને અને સ્રીઓ પણ તે સહેલાઇથી સમજી શકે.

જૈન સાહિત્યમાં સર્વથી ઉતરતા પ્રકારનું સાહીત્ય આપણું કથા સાહિત્ય છે. કથાઓનો તો એક ખજાનો જ આપણા સાહીત્યમાં નજરે પડે છે. આ બધી કથાઓમાંની ઘણીક મેં વાંચી છે, અને મને જણાય છે કે, કથાઓમાંથી ૯૫ ટકા જેટલી કથાઓ તો તદનજ કલ્પિત છે, એટલુંજ નહિ, પણ તેમાં જે પાપની ધમકી અને પુણ્યની લાલચ અવારનવાર બતાવવામાં આવે છે, તેનું પ્રમાણ સાદી અકકલ અને કર્મશાસ્ત્ર કદીબી કબૂલ ના કરે તેવું છે. એકજ દાખલો વખતના અભાવે હું તમોને કહીશ. એક એવી કથા છે કે, જેમાં દેહરાની એક ઇંટ લેઈ જાય તો લેઇ જનાર માણસ ચોથી નરકે જાય. હવે કમશાસ્ત્રની બારાખડી જાણનાર પણ એમ કહે કે, આટલા સાધારણ ગુન્હાની આવી ભયંકર સજા હોયજ નહિ. જો ઇંટ ચોરનારને ચોથી નરકે મોકલાવીએ તો તેથી ઘણા ચીકણા પાપો માટે તમો કઇ નરકે મોકલાવશો ? ટુંકમાં આ કથાઓથી તો ઉલટી જૈન ધર્મની જાહેરમાં મશ્કરી થાય છે, ભય દેખાડવા કે લાલચ બતાવવા માટે કોઇને શાસ્ત્ર વિરૂધની ગપો મારવાને અધિકાર આગમોમાં અપાયેલો નથી.

છતાં આવી કથાઓ, શુભ આશયથી, પણ શાસ્ત્ર અને કર્મશાસ્ત્રના નીયમોથી વિરૂદ્ધ નજરે પડે છે. કથા સાહિત્ય, અક્કલ અને શાત્રથી વિરૂદ્ધ વાતોથી શોભાવવું કે ભરવું એ આવકારદાયક નથી.

આજના આ અમુલ્ય પ્રસંગે, મને મારૂ અંતઃકરણ ખાલી કરવા દો. આપણામાં પજુસણ પર્વમાં એવો રીવાજ છે કે ચૌદ સુપના શ્રીમહાવીરના જન્મ દીને ઉતારવાં. હવે આ સ્વપ્ન ઉતારવામાં એટલું બધું પુન્ય મનાય છે કે, લોકો કેટલાએક મણ ઘી તે માટે બોલે છે, દરીઆના વેપારીઓ, વાંઝીઆઓ ઘણા ભાગે, પ્રભુનું પારણું આદિ સુપનો સ્વાર્થ માટે લે છે; હવે તમો જાણીને અજબ થશો પણ મારે ખુલ્લા દીલથી અને શાત્રો અને આગમોના પુરાવા પરથી જણાવી દેવું જોઇએ કે આ રૂઢી પુણ્યની નહિ પણ પાપની છે. વૈષ્ણવોમાં જેમ કૃષ્ણ જન્મ વખતે રીતભાતો થાય છે, તેવી રીતે પ્રભુને વળી હીંચોળવાનું નાટક આપણામાં થાય, અને સાધુઓ આવા પાપને પોતાની છાતીપર ચલાવી લે, અને શ્રાવકો આ મીથ્યાત્વ ક્રિયાને મહાપુણ્ય સમજે એ બીના કેટલી બધી ત્રાસજનક છે? હવે આ ચૌદ સુપનાનું નાટક એ ફક્ત પાપ ક્રિયા છે. પરંતુ દેવદ્રવ્ય વધે તે માટે આ નાટક મીથ્યાત્વ છતાં આપણે ચાલુ રાખવું એવી જે દલીલ કેટલાએક કરે છે, ત્યારે તે દલીલ કરનારાઓપર મને દયા આવે છે.

ઉપધાન નામનું તપ કરતી વખતે, માળા પહેરવી પડે છે. હવે આ માળા માટે દશ કે પંદર રૂપીઆ આપવા પડે છે અફસોસની વાત એ છે કે આ માળાની તેટલી કીંમત હોતી નથી. તેમ શાસ્ત્રમાં આવો આચાર પણ કોઇ રસ્તે ઉપદેશાયો નથી. છતાં મારી માતુશ્રીએ જયારે ઉપધાન ભાવનગરમાં કર્યું

હતું, ત્યારે શાસ્ત્ર વીરૂધની આ રૂઢીને દેવું કરીને પણ પાળવાની કેટલાકોએ ફરજ પાડી હતી. આ પ્રમાણે આપણા ધરમનું અધઃ પતન થયું છે. ઘણી વખતે આઠ અને ચૌદ અપવાસો કરી શકનારાઓ, સારા ખાતામાં આઠ આના ભરતાં મરવા પડે છે. હવે હું તમને પુછું છું કે દ્રવ્ય પરનો જેનો મોહ ઉતર્યો નથી, તેવા માણસનો શરીર પરનો મોહ કદી ઉતરી શકે? પહેલી ચોપડીમાં પાસ ન થનાર માણસ, સાતમીની પરિક્ષા કદી આપી શકે? દાન શીલ તપ અને ભાવના એ પ્રમાણે ચાર ઉત્ત-રોત્તર અધિક કોટીના ધર્મના આચાર છે. જે દાન કરી શકે, તેજ શીળ પાળી શકે. અને તેજ ગૃહસ્થ તપપર આવી શકે. પરંતુ આપણે હાલ શું જોઇએ છીએ? દાન અને શીલ વિનાનાં સ્ત્રી અને પુરૂષો તપશ્ચર્યાના પગથીએ અથડાય છે. ધમનું અધઃપતન અને સત્ય ધર્મની ગેરસમજ આ સ્થીતિ માટે જવા-બદાર છે મને વિશ્વાસ છે કે હવે એવા પુસ્તકો બહાર પાડ-વાની જરૂર છે કે જે ધર્મના અધઃપતનમાંથી ધર્મનો ઉદ્ધાર કરે.

અમુક એક ચીજ કરવીજ અને અમુક ચીજ નાજ થઇ શકે, એવું એકદેશીય ફરમાન આગમોમાં કોઇ ઠેકાણે નથી. ખુદ મહાવીર પ્રભુએ પોતે ક્રિયા ઉદ્ધાર કર્યો હતો. અને જેમ જેમ સમય બદલાય તેમ તેમ ક્રિયા ઉદ્ધાર કરવાની આપણને સલાહ પણ મળે છે. દરેક વખતે દ્રવ્ય ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવનો વિચાર કરી લાભ હાની વિચારી તે સ્થિતિ અનુસર ક્રિયા ઉદ્ધાર થયો છે, અને કરવામાં આવશે એવું આગમોમાં ફરમાન છે. ઘણી ક્રિયાઓ, રૂઢીઓ, રીવાજો અને માન્યતાના સંબંધમાં ક્રિયા ઉદ્ધાર કરવાનો સમય હાલ આવી લાગ્યો છે કે કેમ તે બાબત વિચારવા જેવી છે.

પંડિત બેચરદાસકો સૂચના.

તુમને તા. ૨૧ જાન્યુઆરી ૧૯૧૯ કે દિન **મુંબઈ માંગરોલ જૈન સભામેં** જૈનાગમ વિરૂદ્ધ જો ભષણ દિયાહૈ ઉસસે અનેક અનભિજ્ઞ ભદ્રિક જીવોંકો સત્ય શ્રદ્ધાસે ભ્રષ્ટ હો જાનેકા સંભવ રહતા હૈ, અતઃ ઉસ ભાષણકા આગમાનુસાર ખંડન કરના પ્રત્યેક ધર્મપ્રિય મહાત્માઓકા મુખ્ય કર્ત્તવ્ય હૈ. ઇસ વક્ત ચુપકી લગાના ઠીક ન હોનેસે મૈભી તુમ્હારે કિયે હુએ ભાષણકા ખંડન કરનેકે લિયે તૈય્યાર હૂં. પરન્તુ તુમ્હારે ભાવણકા ખંડન કરનેસે પ્રથમ તુમસે કિતનેક પ્રશ્ન પૂછને આવશ્યક હોનેસે પૂછે જાતે હૈં. ઇનકા ઉત્તર જલદી દેના જિસસે લેખ લિખનેમેં સુલભતા રહે.

પ્રશ્ન ૧. જૈસે ઢુંઢક લોક પરમ પવિત્ર પંચાંગીકા ત્યાગકર કેવલ મૂલમાત્ર બત્તીસ સૂત્ર માનતેહૈ ઇસી તરહ તુમ્હારા માનનાહૈ ? યા પંચાગી સમેત પૈંતાલીસ આગમ માનતેહો ?

પ્રશ્ન ૨. શાસન પ્રભાવક સુવિહિત ગચ્છકે ધોરી **શ્રીહરિભદ્ર સૂરિશ્વરજી**કે બનાયે હુએ ગ્રન્થોકો સૂત્રાનુસાર હોનેસે જૈનસમાજ સૂત્રવત્ માનતાહૈ, એસેહી શાશન પ્રભાવક શ્રી હેમચંદ્રાચાર્ય, શ્રી અભયદેવસૂરિ, શ્રી મલયગિરિ મહારાજ, શ્રી દેવેન્દ્રસૂરિ, શ્રી ધર્મઘોષસૂરિ, શ્રી રત્નશેખરસૂરિ, શ્રી વિજયહીરસૂરિ, શ્રીમદ યશોવિજય ઉપાધ્યાય આદિ અનેક મહાત્માઓકે કિયે હુએ ગ્રન્થ

સૂત્રવત્ આદેય હોનેસે જૈનસમાજને પરમ માન્યહૈં ઉન ગ્રન્થોંકો તુમ પ્રમાણ માનતેહો યા નહીં !

પ્રશ્ન ૩. " પ્રથમકે સમયમેં મંદિરોમેં કિવાડ (કમાડ) નહીં હોતેથેં ઔર વે મંદિર જંગલોમેં હોતેથેં શહરોંમે નહીં " ઇસ વિષયકો સાબિત કરનેકે લિયે તુમ્હારે પાંસ કિસી સૂત્રકા પાઠ હૈ ? યા યુંહી ગપ્પ મારી હૈ ? ખુલાસા કરો.

પ્રશ્ન ૪. કેશર, ચંદન, બરાસ, પુષ્પ આદિસે પરમાત્માકી મૂર્તિકી પૂજાકો તુમ માન્ય રખતે હો યા નહીં ? ખુલાસા કરો.

પ્રશ્ન ૫. તાન્ત્રિકયુગ કિસ સંવતમેં કિસ પુરુષસેં શુરૂ હુવા માનતે હો ? ઔર તાન્ત્રિક શબ્દસે ક્યા અર્થ લેતેહો ઇસ બાતકા ખુલાસા લિખો.

પ્રશ્ન ૬. તા. ૨૦ મી એપ્રીલ સન ૧૯૧૮ કે **જૈનપત્રમેં** તુમ્હારા દિયા હુવા ભાષણ જિસપ્રકારસે છપા હુવાહૈ. તુમને ક્યા ઇસી તરહસે ભાષણ દિયાથા. યા કુછ ફર્ક રહાથા. અગર ફર્ક હોવે તો સૂચના કરદેની.

પ્રશ્ન ૭. દેવદ્રવ્યકે વિષયમેં તુમ્હારે દિયે હુએ ઇસ વિરૂદ્ધ ભાષણસે કિતનેક લોક તુમકો નાસ્તિક કહતેહૈ. તો કિતનેક રાયચંદ્ર મતાનુયાયી માનતેહૈં. તો કિતનેક ઢુંઢીયા હોગયા ઐસા કહતેહૈં ઇત્યાદિ જિતને મુંહ ઇતની બાતેં હોતીહૈં અતઃ તુમકો ઉચિતહૈ કિ અપના મન્તવ્ય જાહિર કરો કિ " મેં મૂર્તિપૂજન શ્વેતામ્બર

ધર્મકી પૂર્ણ શ્રદ્ધા રખતાહું. યા દિગમ્બર યા ઢુંઢક અથવા રાયચંદ્ર મતકી શ્રદ્ધા રખતાહું ક્યોંકિ કહાવતહૈ કિ–'સ્ફુટ વકતા ન વંચકઃ'.

જબતક તુમ તુમ્હારે હસ્તાક્ષરસે ઇસ વિષયકા નિર્ણય નહીં કરો વહાં તક તુમ્હારેમેં મિથ્યા દર્શનકી અસરહૈ ઐસા માનકર આસ્તિક લોક તુમ્હારી બાબતપર કદાપિ વિશ્વાસ નહીં રખેંગે.

છપાવી પ્રસિદ્ધ કરનાર	લેખકઃ—શ્રીમદ્ વિજયકમલસુરીશ્વર
શા. નાથાભાઈ દોલતચંદ	**ચરણકમલ ચંચરીક વ્યાખ્યાન વાચસ્પ**
રહેવાસી—**ડભોઇ.**	**શ્રીમાન્ મુનિ લબ્ધિવિજયજી**

જૈન સમાજનું તમસ્તરણ !

(લેખક—પંડિતજી બેચરદાસ.)

આ નિવેદન લખતાં પહેલાં મારે એક કથા લખવાની છે, અને એ તરફ આખો જૈન સમાજ લક્ષ્ય કરશે એવી આશા રાખું છું.

શિયાળાના દિવસોમાં, પણ જે સમયે ધુમસ વધારે પડતો તે વખતે એક નાનો સંઘ, પોતાના માનીતા સરદારની વ્યવસ્થા નીચે પગ રસ્તે યાત્રાએ જતો હતો. સંઘના યાત્રાળુઓ પોતાના સરદારનેજ વા સરદારની આજ્ઞાનેજ ઇશ્વરરૂપે માનતા હતા, એટલે તે પોતાના સરદારની વા તેની આજ્ઞાની નીચેવિના વિચાર્યેજ પ્રવૃત્તિ કરતા હતા. યાત્રાળુઓ સરળ તેમજ ભોળા હતા અને સરદારપણ તેવોજ હતો, માત્ર પોતાનું સરદારપણું સચવાય એ માટે તેણે કેટલીક ઈશ્વરી વાતો મુખસ્થ કરી હતી અને તેમાંની કેટલીક લોકોને કરી હતી. ત્યારે બીજી કેટલીક વાતો માટે, લોકોને અનધિકારી ઠરાવી ચલાવ્યું હતું. રોજ ચાર અને પાંચ વાગ્યાની વચ્ચે મુસાફરી શરૂ થતી એટલે રસ્તે ચાલતાં તેઓએ અને તેના સરદારે, સામો પાણીના તરંગની જેમ ગતિ કરતો, ધુમસનો પ્રવાહ જોયો. સંઘમાંના કોઇએ કે સરદારે કદી સમુદ્ર નજરે જોયો ન હતો, પણ માત્ર તેની બડાઇ, તે પણ નહીં જેવી સાંભળી હતી. આથી ધુમસને જોઇને સરદારે પોતાના સંઘને આજ્ઞા કરી કે ભાઇઓ ! જુઓ, આ સામે દેખાય એ દરિયો છે.

માટે આપણે તેને તરી પેલે પાર જવાનું છે.' આ આજ્ઞા સાંભળી સંઘના પ્રત્યેક મનુષ્યે પોતપોતાનો સામાન પોતાના શરીરસાથે મજબુતાઈથી બાંધ્યો અને તે દરેક પોતાના સરદારનો સામાન પણ ભાગે પડતો બાંધ્યો. પછી સરદાર સાથે તે બધા દરિયાને (ધુમસને) તરવા લાગ્યા. વાસ્તવિક રીતે તરવાનું જમીન પર હોવાથી તરતાં તરતાં તે પ્રત્યેકનું શરીર છોલાયું, છાતી છોલાઇ, ગોઠણ છોલાયા અને આખરે આખું શરીર લોહીલોહાણ થઈ ગયું. તો પણ તેઓ તરતાં તરતાં એમ બોલતા હતા કે, ભાઇ ! કાંઇ દરિયો તરવો સહેલ નથી, એ તો લોહીનું પાણી થયેજ તરી શકાય છે. આ વખત છે. આ રીતે થોડો વખત વીત્યા પછી સૂર્યગત અરૂણિમાની અસર થવાથી ધુમસને નાસી જવું પડ્યું તે સંઘે જાણ્યું કે હા....શ, હવે દરિયો તરાઇ રહ્યો. આ પ્રમાણે તેઓએ પ્રવાસ કરી ઈષ્ટ સ્થાને પહોંચી ધર્મ ક્રિયાકાંડ કરી પોતાના સરદારે આપેલા ચેતવણીનો આભાર માન્યો. ત્યાં તે ભોળા લોકોને એક ભૂગોળના જાણકાર અને સમુદ્રથી પૂરા પરિચિત એવા વૈદ્યનો સમાગમ થયો સમાગમને પરિણામે તે પ્રત્યેકે પોતાના પ્રવાસનું વીતક કહેવા સાથે શરીર પરનાં તે તે વ્રણો પણ બતાવ્યાં. ડહાપણવાળા વૈદ્યે તે વીતક વિષે કાંઇ ન કહેતાં સૌ પહેલાં તેઓને ઔષધ આપ્યું અને આરોગ્યનો બોધ કર્યો. પછી છેવટે ગંભીર મુખે સૂચવ્યું કે ભાઇ ? તમે તર્યા એ કાંઇ દરિયો ન હોવો જોઇએ. પાણીમાં તરનારાઓનું શરીર પ્રાયઃ છોલાતું નથી. તમારા શરીર પરનાં વ્રણો ઉપરથી જણાય છે કે, તમે જમીન ઉપરજ તર્યા લાગો છો, તમને એવો ભ્રમ થવાથી કોઇ બીજા પદાર્થને દરિયારૂપે કલ્પી તમે આ તરવાની પ્રવૃત્તિ કરી જણાય છે. મારા ધારવા પ્રમાણે આ રસ્તે સૂર્યો-

દય પહેલાં ધુમસ પુષ્કળ પડે છે એથી તમે અને તમારા સરદારે તેને જ દરિયો કલ્પ્યો જણાય છે. બીજું ભૂગોળ વિદ્યા પ્રમાણે પણ આટલા પ્રદેશમાં ક્યાંય દરિયાની હયાતી હોય એવું મેં એક પણ નકશામાં જોયુ નથી. એટલે માત્ર તમારા આ ભ્રમને લીધે તમારે આ વિશેષ પણ વ્યર્થજ તપ કરવું પડ્યું છે. આટલું બોલી તે વૈદ્ય બીજું કાંઇ કહેવા જતો હતો એટલામાં એક સંઘ, પોતાના સરદારનું અને પોતાનું અપમાન થવાથી વૈદ્યને, તેના બાપને, તેના ગામને, તેના કપડાંને, તેની ટોપીને અને તેના જોડા તથા જોડા સીવનાર મોચી સુદ્ધાંને પણ ગાળોથી નવાજવા લાગ્યો એટલે વૈદ્યરાજ મૌન ધરી પોતાના સ્થાને ચાલ્યા ગયા અને કદી ધુમસનો દરિયો મટયોજ નહીં જૈન સમાજના મોટા ભાગની જે અત્યારની દશા છે તે લગભગ એ સંઘના જેવી છે પરમ કારૂણિક ભગવાન મહાવીર જેવા સરદારોના અભાવે મહાવીરના નિર્વાણને પ્રાયઃ બે ત્રણ કે ચાર પાંચ સૈકા જેટલો વખત વીત્યે, જૈન સમાજના વિશેષ ભાગે તમસ્તરણ આરંભ્યું હતું. અને તે ઠેઠ અત્યાસુધી ચાલ્યું આવ્યું છે આપણા વારસામાં આવ્યું છે આપણી ગળથુથીમાં ભેળાયું છે. એ તમસ્તરણથી આપણો આંતર આચાર બાહ્ય આચાર, આપણુ સાહિત્ય, આપણી રહેણી કહેણી આપણો ધન (ક્રિયાકાંડાદિ અનુ-ષ્ઠાન), આપણાં ધર્મ સાધનો અને આપણે બધા એટલા બધા છોલાઇ ગયા છીએ કે જાણે આપણે અત્યારે નવી ખાલ ધરી ન હોય. આપણે આ નવી ખાલથી એટલા બધા પરિચિત અને સંતુષ્ટ થયા છીએ કે એનાથી થતી હાનિ તો આપણા ખ્યાલમાં આવતીજ નથી, તો આપણી મૂળ ખાલ કેવી હતી, તે વિચાર તો ઉગેજ શી રીતે ? મારી ઘણા દિવસથી ઇચ્છા હતી કે, એવા

કોઇ પ્રસંગે હું જૈન સમાજને તેની મૂળ ખાલનો અને નવી ખાલનો પરિચય કરાવું તેઓની મૂળ ખાલ છોલાઇ શી રીતે ? સડી શી રીતે ઉતરી શી રીતે ? અને તે તે સ્થાને નવી નવી ખાલો કયે કયે પ્રસંગે અને કયા કયા પ્રકારે આવી ? તથા છેવટે નવી ખાલવાળા આપણે માત્ર નામનિક્ષેપેજ મૂળ પુરૂષના આશ્રયી બન્યા, એ બધું સધાત પણ પ્રામાણિક ઇતિહાસના આશ્રયથી સવિસ્તર જણાવું. આ ઇચ્છાને બર લાવવા જાન્યુઆરી માસના પાછલા ભાગમાં મારા વડિલ અને પ્રતિષ્ઠિત ધારાશાસ્ત્રના સાક્ષ્યમાં માંગરોળ જૈન સભાના સ્થાનમાં મને બોલવાનો વખત મળ્યો હતો અને તે પ્રસંગે મેં ‘ જૈન ધાર્મિક સાહિત્યમાં વિકાર થવાથી થએલ હાની ’ એ મથાળા નીચે મને મારા અભ્યાસ દરમિયાન જે લાગ્યું તે જણાવ્યું હતું. તે વખતે મેં મારા કથન વિષે ખરાખોટાનો દાવો કર્યો ન હતો અને અત્યારે પણ હું તેવો દાવો કરતો નથી—માત્ર મને જે તથ્ય લાગ્યું તે સૂચવ્યું હતું અને એ તથ્ય (મારી દૃષ્ટિએ તથ્ય છે પણ) વસ્તુતઃ કેવું છે, એ સંબંધે કસવા શોધકોને આમંત્ર્યા હતા. પ્રકાશ થએલ મારા ભાષણમાં મારો આશય અબાધિત છે, પણ કોઇ સ્થળે ક્યાંય એકાદ બે શબ્દો ઉગ્ર પ્રકટયા લાગે છે. મને યાદ છે ત્યાંસુધી મેં મારા ભાષણમાં નહીં જેવીજ ઉગ્રતા આણી હતી. જિજ્ઞાસુઓએ તો શબ્દોની સામે નજર ન કરતાં આશય ઉપર ચર્ચવાનું છે, પણ જેઓ નરા શબ્દગ્રહી છે તેઓએ વિના કારણે તપ તપવાનું નથી. છપાએલ મારા ભાષણમાં મેં જે શાસ્ત્રનાં વાક્યો કહ્યાં હતાં તે સંસ્કૃત અને પ્રાકૃત હોવાથી પ્રકટ થયાં જણાતાં નથી, તેમ કોઈ કોઇ વિચાર અપ્રકટ રહ્યા છે. જેટલું છપાવ્યું છે તે, મારા આશ-

ચથી તો મને અબાધિત લાગે છે. એટલે 'તે બરોબર નથી' ૧ એવું કહેવાનું મારે રહેતું નથી. જે જે મુદ્દાઓ તે વખતે મેં ચર્ચ્યા હતા તે પ્રત્યેક ઉપર મારે સવિસ્તર (નિબંધરૂપે) લખવાનું હોવાથી મારૂં આખું ભાષણ હું હાલમાંજ પ્રકટ કરવા ઇચ્છતો નથી મે કોઈ પાસે મારા બોલવા વિષે જવાબ માગવાની ઇચ્છા કરીજ નથી, તોપણ કેટલાક અકાળવર્ષી દાની મહાશયો મને જવાબ આપવા પૂછાવે છે કે, ૨ તમે કહો એ ગ્રંથમાંથી જવાબ આપીએ, શું તમોને સૂત્રો માન્ય છે ? ? કેટલાં અને કયાં કયાં સૂત્રો માન્ય છે ? પંચાંગી માન્ય છે ? પંચાંગી ઉપરાંત પૂર્વાચાર્યના ગ્રંથો માન્ય છે ? ઇત્યાદિઆનો ઉત્તર, મારી જવાબ મેળવવાની અનિચ્છાજ છે. પુછનાર મહાશયે પોતાનું દાનિત્વ અહીં ન જણાવતાં આવા ભયંકર દુષ્કાળમાં કોઇ ક્ષુધાર્ત વ્યક્તિ પ્રતિ જણાવ્યું હોત તો જરૂરપુણ્યભાગ બનત અસ્તુ. વસ્તુસ્થિતિ આમ છતાં પુછનારના આદરની ખાતર અને ચર્ચાના ક્ષેત્રને વિસ્તીર્ણ કરવાની વૃત્તિથી મારે જણાવવું જોઇએ કે, મારે સાહિત્યમાત્ર સાહિત્યરૂપે સ્વીકાર્ય છે, એથી કોઇપણ ચર્ચક જિજ્ઞાસુએ મારી સાથે ચર્ચા કરતાં, કોઇપણ સાહિત્યને પોતાના તમસ્તરણની ઢાલ બનાવતાં નીચેના મુદ્દાઓ ઉપર લક્ષ્ય રાખવાનું છે, જે સાહિત્યની ઓથે રહી મારી સાથે ચર્ચા ચલાવવામાં આવે તે સાહિત્યમાં મૂળ

---

૧. જૈનધર્મ પ્રકાશના ચાલુ માસના અંકમાં અમોને તે ભાષણના સંબંધમાં જણાવવામાં આવે છે કે, જે ભાષણ પ્રકટ થયું છે, તે બરોબર નથી. આમ જણાવ્યું છે, તે કોના કહેવાથી જણાવ્યું છે, તે હું જાણતો નથી. ૨ જુઓ એજ માસિક પૃ. ૧૪.

પુરૂષના મૂળ વિચારોનો કેટલો અંશ છે? નૈમિત્તિક કેટલું છે? આગ્રહજન્ય કેટલું છે? આલંકારિક કેટલું છે? સાંસર્ગિક કેટલું છે? અનુકરણજન્ય કેટલું છે? અને રૂઢિજન્ય કેટલું છે? તથા એ સાહિત્ય કયા આપ્તપુરૂષે રચ્યું છે? ('આપ્ત' નો અર્થ અહીં ધર્માગ્રહહીન પુરૂષ સમજવાનો છે). ઇત્યાદિ. એ બધા મુદ્દાઓ ઉપર લક્ષ્ય રાખી જો મારી સાથે ચર્ચા ચલાવવામાં આવશે તો હું તેનો તેજ પ્રમાણે ઘણીજ કોમળતાથી ઉત્તર આપીશ. પણ માત્ર મોટા મોટા આચાર્યોનાં નામો આપી જો ટિંખળ કરવામાં આવશે તો સૌની સાથે હું પણ હસીશ, પણ ભડકીશ નહિ.

॥ जैन तंत्रीनो पक्षपात ॥

પ્રિય સજ્જનો ! લોકોને ભ્રમ જાલમાં ફસાવી પોતાના આત્માની પરલોકથી બેદરકારી કરનાર જૈનપત્રકાર તા. ૭ સપ્ટેમ્બર ૧૯૧૯ ના અંકમાં પક્ષપાતનાં ચસ્મા ચઢાવી જૈનરત્ન વ્યાખ્યાન વાચસ્પતિ શ્રીમાન્ મુનિ લબ્ધિવિજયની તરફથી શાસન સેવા નિમિત્તે નિર્મિત દેવદ્રવ્યાદિ સિદ્ધિ નામના પુસ્તકને દેખીનેજ જાણે ભડકી ગયેલા હોય એવી રીતે શ્રાવકને ન છાજતા શબ્દોમાં ટીકા કરવાને મંડી પડયા છે. પરંતુ એટલો પણ વિચાર નથી કર્યો કે મારી એક પક્ષીય રૂદન લીલાથી શુ વળવાનું છે.

અમો આવી એક પક્ષીય રૂદન લીલાનો જવાબ આપવાને જરાપણ આતુરતા નથી ધરાવતા. અને આવા યુક્તિશૂન્ય લખાણોનો ઉત્તર લખવાને અમોને વખતજ નથી. તેમ છતા પણ અમો અમારી લેખણીને સતેજ કરવામાં એટલુંજ કારણ માનીથે છીએ કે જૈનપત્રકારની કરેલી પક્ષપાતથી ભરેલી ટીકાને વાચી કેટલાક સરલ હૃદયવાળા ભાદ્રિક પુરૂષો એમ ન માની બેસે કે, અધિપતિની કરેલી ટીકામાં–સત્ય અથવા ન્યાય જેવું કાંઇ રહેલું છે. બસ એટલાજ માટે અમોને આ પ્રયત્ન કરવો પડયો છે.

તંત્રીજી પોતાના સ્વાર્થતંત્રને આગળ રાખી લખે છે કે, " તેઓ કાંઇ નવું શાસન પ્રરૂપવા કે શાસ્ત્ર રચવા માગતા નથી; પરંતુ ઐતિહાસિક દ્રષ્ટિએ જૈન શાસનના કાલનું દિગ્દર્શન પોતાના અભ્યાસ અને અનુભવ પ્રમાણે કરીને પ્રભુ મહાવીરના સમયથી અત્યાર સુધીમાં શાસન પ્રણાલીમાં કેવા કેવા ફેરફાર થયા જણાય છે તે બતાવવાથી વધારે શોધખોળ કે ચર્ચા કરવાને વિદ્વાનો તેમજ ઇતિહાસ રસજ્ઞોને તક મળે " ઇત્યાદિ. તંત્રીનુ આ લખાણ હડહડના જૂઠથી ભરેલું છે. બેચરદાસે પોતાના ભષણમાં જે જે

શબ્દો કહેલા છે; તે અંતિમ સિદ્ધાંત રૂપેજ હતા એમ એના અક્ષરો પરથીજ સિદ્ધ થાય છે હાં. જ્યારે ચારો તરફથી ફિટકારનો વરસાદ વરસવા લાગ્યો ત્યારે ડરથી કબુલ કરતા હશે કે મેં અમુક અમુક અભિપ્રાયથી કહ્યું નથી. તંત્રીજી! જરા અંતરચક્ષુ-ઉપરના પક્ષપાતરૂપી ચસ્મા ઉતારી નાંખો તો માલુમ પડશે કે, બેચરદાસે દેવદ્રવ્યાદિ વિષયમાં જે વિચારો કહેલા છે તે દુરાગ્રહથી અસિદ્ધાંતરૂપ છતાં પોતાની સમજ પ્રમાણે સત્ય સિદ્ધાંતરૂપેજ કહેલા છે એ વિષયના નિર્ણય માટે જૈનધર્મ પ્રકાશ માસિકનો અંક ૩. પૃષ્ટ ૮૯. પુસ્તક ૩૫ મું જુવો. એમાથી એમની દુરાગ્રહ બુદ્ધિનો પુરો પરિચય મળશે; કેમકે એમને એક વિષયમાં એવા નિરૂત્તર કર્યા છે કે, જેમાં સોલિસિટરે પણ કહ્યું હતું કે, આ તમારો હેતુ અસિદ્ધ છે છતાં એમણે પોતાની હઠ છોડી નથી. તંત્રીજી! કેમ થયું? આ વાત તમોએ વાંચી નથી કે વાંચતાં પક્ષપાતનાં પડળ આવી ગયાં હતાં? જરા ખુલાસો કરશો. બીજી એ વાત છે કે, તેજ સભામાં બેચરદાસે પિસ્તાલિસ આગમ માનવાં છોડી દીધાં અને હું અગિયાર અંગને માનું છું. અને તેમાં પણ મિશ્રણ થયેલું' છે, એવા શબ્દો જે કહેલા તે નવીન મત કહેવાય કે પ્રાચીન? જવાબમાં નવીનજ મત કહેવો પડશે. તો પછી બેચરદાસ નવીન શાસન પ્રરૂપવા કે શાસ્ત્ર રચવા માંગતા નથી. એ કેવી રીતે સિદ્ધ થઇ શકે? અને એમણે વધારે શોધખોળ કરવાના ઇરાદાથીજ દેવદ્રવ્યાદિ વિષયમાં ભાષણ આપ્યું હતું. એવું લખવું પણ તદ્દન અસત્ય છે; કેમકે અભ્યાસ અને અનુભવ પરત્વે જે વાતો કરવાની હોય તેનો ઢંગ જુદો હોય છે અને બેચરદાસનું ભાષણ તે ઢંગથી હજારો માઇલ દૂર છે છતાં તમારી મતિના વિપર્યાસથી તમને તે વાત ન ભાસે તો ચૂપ કરીને બેસી રહો, પણ વ્યર્થ ભોળા લોકોની શ્રદ્ધા બગાડી દુર્ગતિનો માર્ગ શા માટે પકડો છો. આંખ્યો ખોલીને તમે બીજું કાંઇ ન જોતાં તા. ૨૫ મી મે સન ૧૯૧૯ નું તમારૂં જૈન પેપરનું લખાણજ તપાસી લ્યો. તમસ્તરણ નામના લેખથી બેચરદાસે જે પૂર્વાચાર્યોને નીચ રૂપક આપ્યું છે તેથીજ તેમના હૃદયની પરીક્ષા શુ નથી થઇ શકતી

વારૂ ! તમો પત્રકાર નામ ધરાવીને શા માટે ગપ્પગોળા ગબડાવો છો, દુનીયા કાંઇ આંધળી નથી કે તમારી એક પક્ષીય રૂદન લીલાથી દ્રવાર્દ્ર થઇ ખોટા મતમાં ભળી જાય. વળી ફરીથી તંત્રીજી લખે છે કે દેવદ્રવ્યાદિસિદ્ધિ નામે એક પેમ્ફ્લેટ બહાર આવ્યું છે જે કેવળ ન્યાય પ્રમાણ કે દલીલ બહાર ગાળી પ્રદાન અને ક્રોધી હુમલાથી ભરાયેલું છે ઇત્યાદિ” તંત્રીજીનું આ લખાણ પણ પક્ષપાતના રસથી તરબોળ છે; કેમકે વાચસ્પતિજીએ તે પુસ્તકમાં એવી મુદાસર ચર્ચા ચેલાવેલી છે કે, જે પુસ્તકને વાંચીને અનેક લોકોની તરફથી ખુશીના સમાચાર મળી ચુકયા છે. અમો ન્યાયપક્ષથી કહીયે છીએ કે આ પુસ્તકમાં કોઇ જાતનો પણ ક્રોધાવેશથી હુમલો કરવામા આવ્યો નથી; પરંતુ સન્માર્ગ બતાવવામાં આવ્યો છે. જો આવા સન્માર્ગ બતાવવાને હુમલો માનવામાં આવે તો વાંચકના દુર્ભાગ્ય શિવાય બીજું શું કહી શકાય ! અમને એડીટરના મિથ્યાભાવ ઉપર પૂર્ણ ખેદ થાય છે કે પૂર્વાચાર્યો ઉપર કરેલો બેચરદાસનો હુમલો એમને મીઠો સાકર જેવો લાગ્યો કે જેથી તેના ઉપર કાંઇપણ નોંધ લીધી નહીં, અને ઓજસ્વિની ભાષામાં વાચસ્પતિજીના તરફથી આચાર્ય નિંદકને ફિટકાર પૂર્વક કરેલી હિત શિક્ષારૂપ લેખ ઝેર જેવો લાગ્યો, અને યદ્વા તદ્વા લખી બળતું હતું પેટ અને માથું કુટયા જેનું કર્યું છે. અમને એડિટરજીના શબ્દોપર હાંસી આવે છે. કેમકે તે લખે છે કે જો લખનાર મુનિ નહી હોત તો તેને અત્યાર અગાઉ ન્યાયમંદિરના દ્વારે પોતાના મલીન શબ્દો માટે જવાબ આપવા જવું પડયું હોત” તંત્રીજી ! તમો એટલો જરા અકલથી વિચાર કરો કે લાખો જૈનોનું દિલ દુખાવે એવા તમસ્તરણ નામના લેખમા પૂર્વધર આચાર્યોના છાતિ ગોઠણ વગેરે શરીરના અવયવો છોલાણા અને તે આચાર્યો લોહીલુહાણ થઇ ગયા એવા અક્ષરો લખવાવાળા અને તમો છાપવાવાળાના મોંઢા ઉપર જો ન્યાયમંદિરમાં મસીનો કુચો ફેરવવાનો અવસર મળે તો વાચસ્પતિજીને તો એટલી બધી ખુશી થાય કે તેની સીમાજ ન રહે એવું એમના ઉત્સાહ પરથી મને જણાય છે; માટે તમારી તરફથી લખાયેલા શિયાલ ડરામણાથી ડરે તેમ નથી. વળી આગળ

વધી તંત્રીજી એ સાધુ કોન્ફરન્સ અને વંદન વ્યવહારાદિકનો વિષય લખ્યો છે, તે કેવલ કપોલ કલ્પિત હોવાથી ઉપેક્ષણીય છે. વળી તંત્રીજી લખે છે કે, "વર્તમાન ભદ્રિક સરલ પરિણામી આચાર્ય શ્રી વિજયકમલ સૂરીજીની શાસન સેવાની લાગણીને નુકસાન ન પહોંચે" ઇત્યાદિ. તંત્રીજી! શુ તમોને ખબર નથી કે, આચાર્ય મહારાજની શાસન સેવાની લાગણી મિથ્યાત્વના ખંડન પરત્વેજ છે. આ વાતને કાઠીયાવાડ તથા ગુજરાત આદિ અનેક પ્રાંતના લોકો સારી રીતે જાણે છે, અને ભાવનગરમાં પણ પોતાની નિસ્પૃહ વૃત્તિથી મિથ્યાત્વનું કેવું સચોટ ખંડન કર્યું હતું તે તમારી જાણથા બહાર નહીંજ હોય. સૂરીશ્વરજીની શાસન સેવાની લાગણીને નુકસાન પહોંચવાની કલ્પના કરો છો તેથીજ તમારૂ વંધ્યાપુત્ર અને ખરશૃંગ ઉત્પન્ન કરવા જેવું અલૌકિક પ્રવર્તન માલૂમ પડે છે. આચાર્યશ્રી મિથ્યાત્વ ખંડનનું સ્વયંપણ પુસ્તક બનાવી રહ્યા છે જે લગભગ પાંચસો દસ પૃષ્ટ જેટલું લખાઇ ગયેલું છે; માટે આચાર્ય મહારાજ નીચ તમસ્તરણ જેવા લેખનું ખંડન કરનાર પોતાના શિષ્ય ઉપર અત્યંત આનંદથી રોમાંચિતજ થઇ રહેલા છે એજ સમજવાનું છે. અને આ વાતના વિશેષ નિશ્ચય માટે તમો જે પેમ્ફલેટને સાકર જેવું મીઠું છતા કડવું કહો છો, તેજ પેમ્ફલેટના મંગલાચરણનો અર્થ કોઇ પંડિતથી પુછી લેજ્યો. તેમાં સાફ લખ્યું છે કે, આચાર્ય મહારાજની પ્રેરણાથી આ પુસ્તક લખું છું. વળી પત્રકારે લખ્યું છે કે, "કોઇ ગ્રંથમાળાના કાર્યવાહકોને ભૂલાવો ખવરાવી તેના ગ્રંથમાળાના પ્રગટ થતા ગ્રંથોમાં આ મલીન પુષ્પને અંકસ્થાન આપવાની ભૂલ કરાવી જણાય છે" ઇત્યાદિ. તંત્રીજી! કોઇપણ ગ્રંથમાળાના કાર્યવાહકને ગ્રંથકારે ભુલાવ્યા નથી, પણ તમેજ પૂર્વ કર્મના ઉદયથી ભૂલભુલઇયાના ચક્રમાં પડયા છો. અને બેચરદાસનો લખેલો તમસ્તરણ નામનો નીચ લેખ લખી પોતાના છાપાને અપવિત્ર બનાવી બુદ્ધિ બગાડી બેઠા છો; જેથી એક પવિત્ર પુષ્પને મલીન માની લીધું છે. આ તો એવી વાત થઇ છે કે એક ભમરે એક ગદ્દઇયા (ગેંગા) ને કમલની સુગંધી લેવા પોતાની સાથે લઇ જવા પ્રેરણા કરી ત્યારે અવિશ્વાસી

ગદ્ધઇયાના મનમાં એવો વિચાર ઉદ્દ્ભવ્યો કે કદાચ ત્યાં કાંઇપણુ ન હોય તો હું મારી મૂલ મુડી પણુ ગમાવી ન બેસું ! એવો વિચાર કરી પોતાંના મોંઢામાં અશુચિ પદાર્થની એક ગોળી લઈ લીધી, અને ભમરાની સાથે જઇ તેના બતાવેલા કમલ ઉપર જઇ બેઠો, પણુ સુગંધી ન આવવાથી થાકીને બોલી ઉઠયો કે આ ફુલ મલીન છે.

તંત્રીજી ! કેમ આ ગેંગાના કથનને તમો સાચું માની શકશો ? કદાપી નહીં. બસ ! એવીજ રીતે તમારી અંદર મીથ્યા દુર્વાસના બેઠેલી છે; ત્યાં સુધી આ નિર્મળ પુષ્પની સુગંધીના તમો અધિકારીજ નથી. જો કદી મિથ્યા વાસનાને દુર કરો તો જેવી રીતે સમસ્ત આસ્તિક સંઘ આ ચોપડી ઉપર ખુશ થયો છે અને એને નિર્મળ પુષ્પ તરીકે સ્વીકારે છે; તેવીજ રીતે તમો પણુ સ્વીકાર કરવાને ભાગ્યશાળી થઇ શકશો. વાસ્તે મીથ્યા વાસનાને દુર કરો. અને આગળ આગળ નીકળતા ભાગોનું મનન કરો. આ તો હજુ પ્રથમ બાની થઇ છે. એટલાથીજ ન ગભરાઇ જશો. “આ ચોપડી છપાવનાર શ્રાવકે પોતાની કમાઇનો દુર્વ્યય કર્યો છે.” તમારૂં આ લખાણ પણુ ઉપર ચિતાર આપેલ વાસનાનેજ આભારી છે, અને એવી વાસનાથી પીડાતા જીવોના ખુલાસાને પ્રસિધ્ધ કરતા શ્રાવકજનો કાનોથી સાંભળવામાં અને આખોથી વાંચવામાં પણુ અધર્મ સમજે છે. ત્યાર પછી તમોએ લખ્યું છે કે, “બેચરદાસના વિચારો સામે લેખકે સપ્રમાણુ કે ન્યાય પુરઃસર એક પણુ શબ્દ લખવાને બદલે નર્ક અને પરમાધામીનું વર્ણુન કરી જેમ નાના બાળકને ઉંઘાડવા તેની મા ‘ જો બાવો આવ્યો છે ’ વિગેરે કહીને હવામાં બાવા અને બાધડ બતાવે છે” ઇત્યાદિ.

તંત્રીજી ! તમો આકુળ વ્યાકુળ કેમ થઇ જાઓ છો ? જરા ધીરજ રાખો. જૈનરત્ન વ્યાખ્યાન વાચસ્પતીજીના પુસ્તકમાંથી તમને એટલી બધી યુક્તિયો અને શાસ્ત્રીય પાઠો મળશે કે તમો હેરાન થઇ જશો, કે હાય ! બાપ ! આટલા બધા પાઠો અને યુક્તિયો જે વિષયને સિધ્ધ કરે છે ત્યાં

નાસ્તિક મંડળ કેવી રીતે ટકી શકશે ? અને હમારી ધારણા કેવી રીતે પાર પડશે; અને આસ્તિક મંડળ આવા પ્રાચીન પાઠોનો અનાદર કરી હમારી વાત કેવી રીતે માનશે ?

હાય બાપ ! માનવું તો દુર રહ્યું, પણ અમો વધારે બોલીશું તો શાસનરક્ષા નિમિત્તે સડેલા પાનની પેઠે અમોને બહાર પણ ફેંકી દેશે હં એવા અનેક સંકલ્પો પેદા થશે. પ્રાયઃ દશ ફારમ જેટલી ચોપડી થશે. તેમા હજી તમોએ ફારમ તો બેજ દેખ્યાં છે; તેમાં બધી યુકિતઓ કેવી રીતે આવી શકે, અને તેમાં નર્કના સ્વરૂપને માતાના બતાવેલ બાવા અને બાઘડ જેવું સમજી બેઠા છો. તે પણ તમારી મોટી ભૂલ છે એમા તમો મીથ્યા અભિમાની આદમી જેવી દશાને વશ થઇ જાઓ એવો અમને ભય રહે છે. જેમ કોઇ એક મિથ્યાભિમાની છોકરૂં પોતાની માતાના મૂખથી નાની ઉમ્મરમાં હમેશાં સાભળતો હતો કે દેખ બેટા ! વાઘ આવ્યો તને લઇ જશે, તને ખાઇ જશે એવી વાતો નિરંતર સાભળવાથી (અધિપતિની જેમ) તેણે બધા વાઘો બોટાજ સમજી લીધા, એક વખતે ભયાનક જંગલમાં જતો હતો, તે વખતે તે સ્થાનના જાણકાર કોઇ મનુષ્યે જણાવ્યું કે આ ઝાડીમાં વાઘ છે, અને તને ખાઇ જશે માટે તું ન જા " તથાપિ તે મિથ્યાભિમાની મનુષ્ય માના મોંઢાનો વાઘ માની તે ઝાડીમાં પેઠો અને વાઘના પંઝામાં સપડાઇ જવાથી મોતને વશ થઇ ગયો. અધિપતીજી ! તમે તમોને તથા તમારી શિક્ષાને માનનારા પૂર્વધર શ્રુતધરોના નીંદકોને જે નર્કનો ભય બતાવ્યો છે. તેને હવામાના બાવા વાઘડા જેવો ન સમજતા. અને સમજયા તો પેલા મિથ્યાભિમાનીના જેવી સજાને પાત્ર થશો. શ્રુતકેવલીપ્રભુની નીંદામાં તમસ્તરણ જેવા લેખ લખનારના માટે જે નર્કનું સ્વરૂપ ચીતર્યું છે તે તમને ઠીક નથી લાગતું તો શું તમો એવા લેખ લખવાવાળાનું સ્વર્ગ ગમન માનો છો ? અને એમ સમજીને શું પૂર્વધર વજ્રસ્વામિ, જીનભદ્ર ગણી ક્ષમા શ્રમણ, દેવર્ધ્ધિ ગણી ક્ષમાશ્રમણ આદી મહાપુરૂષ પણ અંધારૂં તર્યા અને છાતી ઘુંટણ શરીર છોલાઇ ગયું, અને તે લોહીલુહાણ થઇ ગયા, અને

બ્હેચરદાસ જેવો નીચ આત્મા વૈદ્યના ઠેકાણે બન્યો છે, એવા સ્વરૂપનો સુચક લેખ જૈનપત્રમાં લીધો હતો કે? જો એમ ધાર્યું હશે તો યાદ રાખજો કે તે સ્વર્ગ નીચે મળશે. ઉંચે નહીં અને ત્યાં જતાંજ લાંબા લાંબા દાંતવાળા સુળી ઉપર સનમાન કરશે, ગભરાશો નહીં. ત્યાર પછી તંત્રી મહાશયે વિના સમજે જેમ મનમા આવ્યું તેમ બકવાદ શરૂ કર્યો છે, અને અનેક પૂર્વાચાર્યોનાં નામ લખી છેવટમા બુટેરાયજી આદીનાં નામ લખી કહે છે કે, કેટલીક પ્રવૃત્તિઓને દુર કરી છે. તો તે પણ જવાબદાર ગણાવા જોઇએ" આ સ્થળે એટલોજ ખુલાસો બસ છે કે, પૂર્વોક્ત મહાત્માઓએ ચૈત્યવાસી તથા મિથ્યા ખંડન સંબંધી પ્રવૃત્તિ કરી છે તે પૂર્વધરોથી વિરૂધ્ધ તથા તેમની નિંદાની ન હતી અને તમસ્તરણ લેખ પૂર્વધરોથી વિરૂદ્ધમાજ લખાએલો છે, એવી નીચ આચરણ કરવાવાળા નર્કમાં જાય તેમાં આશ્ચર્ય શું છે, અને તમસ્તરણના લેખક તથા મુદ્રણ કરતાઓની સાથે પુર્વધર પુરૂષોનાં દષ્ટાંત આપવાં તે એક વેશ્યાની પ્રવૃત્તિમાં સતીનો સમાવેશ કરવા જેવું યુક્તિશૂન્ય હોવાથી તે તમામ લખાણ ઉપેક્ષણીય છે. ત્યારપછી તંત્રીજી પોતાની માયા જાળને વીસ્તારી એવું લખે છે કે, આગળ જતાં લેખકે પોતાને આવડયા તેટલા પૂર્વાચાર્યો અને સમર્થ પુરૂષોનાં નામો લખી ભોળી અને શ્રધ્ધાળુ જૈનપ્રજાને ઉશ્કેરવા જાણે તેઓને પંડીત બ્હેચરદાસે પોતાના ભાષણમાં નીંધા હોય તેમ બતાવવા પ્રયત્ન કર્યો છે. ઇત્યાદિ તંત્રીજી! વાચસ્પતિએ એવું કયાં લખ્યું છે કે, બેચરદાસે પોતાના ભાષણમાં પૂર્વાચાર્યોને નિંદ્યા છે? એમણે તો એમ લખ્યું છે કે, તા. ૨૫મી મે સ. ૧૯૧૯ ના પૃષ્ટ ૩૭૩ ના જૈન પેપરનાં જે તમસ્તરણ નામનો લેખ લખ્યો છે; એમાં બેચરદાસે દેવદ્રવ્યાદિ સિધ્ધિ નામના પુસ્તકમા લખેલા શ્રુતધર મહારાજાઓની પણ નિંદા કરતાં આચકો ખાધો નથી. વજ્રસ્વામી, ઉમાસ્વામી મહારાજ, પન્નવણાકાર શ્યામાચાર્ય આર્ય રક્ષિત, જિનભદ્રગણિક્ષમા શ્રમણ આદિ જે જે શ્રુતધરો થયા છે તે, અને અદ્યાવધિ થએલ સમસ્ત આચાર્યો વગેરેને અંધારૂ કરવાવાલા, અને છાતિ ગોદણ ધસાવાથી લોહી લુહાણ

થનાર પ્રસિધ કર્યો છે; કેમકે તમસ્તરણમાં લખેલું છે કે, "મહાવીરના નિર્વાણને પ્રાયઃ બે ગણુ કે ચાર પાંચ સૈકા જેટલો વખત વીતે જૈન સમાજના વિશેષ ભાગે તમસ્તરણુ આરંભ્યુ હતુ અને તે ઠેઠ અત્યાર સુધી ચાલ્યુ આવ્યું છે" ઇત્યાદિ; હવે જૈન પત્રકારની માયાજાલ અને પક્ષપાતનો જૈન સમાજને અનુભવ થયો હશે; કેમકે–પોતેજ તમસ્તરણુ નામનો લેખ લખે છે, અને પોતેજ પાછા બેચરદાસને આચાર્યોની નિંદા કરવાના દુષણથી અલગ જાહેર કરવાનો પ્રયત્ન કરે છે. આ તે કેવો પક્ષપાત! કિંવિચાર પણ કરે છે કે મનમાં આવે તેમ ધમડયાજ કરે છે અમારા પાઠકગણોને પત્રકારના પક્ષપાતના સ્વરૂપનું ભાન થઇ ગયું. હવે–એમની માયા જાલનાં દર્શન કરો–એડીટરની માયાજાલ એ છે કે, તેઓ બેચરદાસે પોતાના ભાષણમાં આચાર્યોની નિંદા નથી એમ લેખ લખી લોકોને ભ્રમ જાલમાં નાખે! છે. પણ વાચસ્પતિજીએ તો તમસ્તરણ નામના લેખમાં પૂર્વાચાર્યોને નિંદા એમ જાહેર કરેલું છે (યદ્યપિ બેચરદાસના દેવદ્રવ્યવિષયક લેખમાં પણ પૂર્વાચાર્યોનું ગર્ભિત પણે ખંડન છે છતાં ભોળા લોકો સમજી ન શકે તેટલા માટે પ્રગટપણે તમસ્તરણના લેખમાં આચાર્યોની નિંદા હોવાથી તે લેખનું નામ અપાયું છે.) ત્યારે ભાઇ સાહેબ ભાષણનું નામ લખી અજાણ લોકોને ભુલવવાનું કરે છે એજ એમની માયાજાલનું પ્રસ્તરણ છે ત્યારપછીના લેખનો હેતુ એવો છે કે બેચરદાસના દેવદ્રવ્યવિષયક લેખને જૈન રીવ્યુના અધિપતિ આદિ અનેક લોકોએ લીધેલો છે; અને ચારે ખુણે પ્રસિદ્ધ કરેલો છે છતાં જૈનને તે માન સુવાંગ આપતાં નરકની સામે આંગલી રાખી કેટલીક શિખામણ લેખકે દીધી છે ત્યારે અમારે સખેદ કહેવું જોઇએ કે વાચસ્પતિ આદિ અનેક અવનવિ ઉપાધિ યુકત લેખક હોવા પછી પણ" ઇત્યાદિ, જે લેખ છે તે પણ માયાવી છે; કેમકે વાચસ્પતિજીએ તમસ્તરણ નામના લેખનું માન સુવાંગ જૈનને આપ્યું છે, ન કે દેવદ્રવ્યવિષયક લેખનું કેમકે દેવદ્રવ્યવિષયક લેખના લેવાવાલાઓને સામાન્ય તંત્રીના નામે આગલપર પુસ્તકમાં હિત શિક્ષા દેવામાં

આવી છે; પરંતુ તમસ્તરણ જેવા અતીવ નીચ લેખને સંપાદકિય નોંધ વગર છાપવાથી તમારા સ્વરૂપનો જે ફોટો ખિંચ્યો છે, તે અક્ષરશઃ ન્યાય છે. જે લેખ આશ્રિત તમારા ઉપર લખાણ કર્યું છે તે લખાણને તમે બીજા લેખ આશ્રિત જનસમુહમાં જાહેર કરો છો, એજ તમારા માયાવી સ્વભાવને સિદ્ધ કરે છે. ત્યાર પછી તમોએ જે ન્યાયાસન ઉપર બેસવાનો ડોળ કર્યો છે તે પણ ઠીક નથી; કેમકે જે અંકમાં તમસ્તરણ નામનો લેખ લખ્યો છે તેજ અંકમાં વડોદરાવાલા પ્રેમાનંદ હીરાલાલનો દેવદ્રવ્ય સિદ્ધિ વિષયક લેખ છે. એમાંતો તમોએ લેખના નીચે સંપાદકિય વિચારમાં ખાસી ત્રણ લીટીઓ લખી છે, અને તમસ્તરણ જેવા નીચે લેખને લઈ લીધો છતાં પણ સંપાદકીય વિચારની ગંધ તે લેખમાં જણાતી નથી. બતલાવો, તમારા માટે ન્યાયાસનનું દ્રષ્ટાંત કેવી રીતે લાગુ પડી શકે. હાં તમારા મનથી તમો માની બેસો કે અમો ન્યાયવાલા છિએ તે વાત જૂદી છે જેમ એક છોકરો ગધેડે ચઢયો હતો, તેને બીજા કોઇએ કહ્યું કે અલ્યા ! આ ખરાબ સ્વારી કેમ કરી છે, ત્યારે તે છોકરો કહેવા લાગ્યો કે હું તો હાથી ઉપર ચઢેલો છું. તો શું આ છોકરાની વાત સાચી માની શકાય ખરી? કદાપિ નહી, જો તમો ન્યાયી હોય તો વાચસ્પતિજીના લેખને પણ તમારા પત્રમાં સ્થાન આપતા, અને તમામ લેખને જાહેર કરતા એના પછી વાચસ્પતિજીના ન્યાય લેખથી ગભરાઇને સંઘને જે અકુંશ મુકવાની ભલામણ કરો છો, તે અકુંશના પાત્ર થોડાજ વખતમાં તમારા વહાલા નાસ્તિકો અનુક્રમથી થતા જશે, ગભરાશો નહી અગર આટલા સામ લેખથી જો તમો નહી સમજ્યા તો ફેર જે જે ઠેકાણે પોંહચી સ્વાર્થવૃત્તિનો ખોલો પોહલો કર્યો છે, તે વિષયને મુખ્ય રાખી તમારાં શાસનવિરૂદ્ધનાં કાર્યો અનુક્રમથી બહાર પાડવામાં આવશે. ઇત્યલં વિસ્તરેણ.

લિ. શ્રીમદાનંદ વિજયસૂરીશ્વરના લઘુશિષ્ય–દક્ષિણવિહારી મુનિ, અમરવિજય મુ. ડભોઈ.

॥ જૈન તંત્રીનો મિથ્યા પ્રલાપ ॥

તા. ૨૧ મી સપ્ટેંબર સને ૧૯૧૯ ના જૈનપત્રમાં પક્ષપાતી જૈન તંત્રી "ઇંદ્રજાલમાં આહુતિ" નામના હેડિંગથી લખેલા લેખમાં જણાવે છે કે "શાસનની હેલના કેમ ન થાય તેજ ઉદ્દેશ ઉપર અમારા કાર્યને આગલ વધારવા બહુ સંભાળ રાખતા રહ્યા છીયે ઇત્યાદિ." ॥ આ લેખમાં તંત્રીજી ભોળાજનસમૂહમાં એમ સિદ્ધ કરવા માગે છે કે, અમો જૈનશાસનની હેલનાથી ઘણાજ ડરીયે છીયે; પરંતુ અમો તથા અમારા વિચારક વાંચકો સારી રીતે સમજી શકયા છીયે કે, જૈનસમાજમાં હેલનાના મુખ્ય સુત્રધાર તે પોતેજ છે; કેમકે અનેક જાતની હેલનામાં અને મિથ્યાત્વની પૂર્ણ પુષ્ટિમાં ભાગ લેવો એજ જૈન પત્રનું મુખ્ય કર્ત્તવ્ય થઇ પડયું છે.

આ વિષયથી સમસ્ત આસ્તિક વર્ગ સારી રીતે પરિચિત છે, એટલે વિશેષ ન લખતાં માત્ર પૂર્વોક્ત તારિખના જૈનપત્રના વાંચનથીજ આ પત્રની નાસ્તિકતાનો પુરો પરિચય મલી શકશે. કેમકે આ તારીખનું આખું જૈન પ્રાયઃ મિથ્યાત્વ પુષ્ટિના લેખોથી ભરેલું છે. અમારૂં એમ માનવું નથી કે આ અંકથી પ્રથમના અંકોમાં મિથ્યાત્વ પુષ્ટિકારક તથા જૈન શાસનની હેલનાકારક લેખો નથી આવ્યા. પરંતુ આ વખતના જૈન અંકમાં તો પવિત્ર જૈન શાસનની હેલના અને મિથ્યાત્વ પ્રકાશના ઘણાજ લેખો છે જૈન ધર્મ સંબંધી જૈન પત્રકારને જરાપણ પ્રેમ હોતતો ગત જૈન અંકમાં અનુવાદક માવજી દામજી તરફથી મોકલેલા નાસ્તિક લેખને કદિપણ પોતના પત્રમાં સ્થાન આપતા નહીં; કેમકે તે લેખ જૈન શાસનના મૂલમાં કુહાડો મારવા જેવો છે. આવા સત્યાનાશી નીચ લેખોને ઝટ ઝટ લઇ લ્યોછો તેથીજ તમારા હૃદયમાં જૈન ધર્મના વિષે કેટલો પ્રેમ છે તે જાહેર થઇ ચુકયું છે; માટે અમો જૈન શાસનના રક્ષક છીયે, અને જૈન ધર્મની હેલનાથી ડરિયે છિયે આવા ડોળ ઘાલું લેખો લખી નાહક જૈન પત્રનાં

કૅાલમ કાલાં કરી કેટલાક ભોળા લોકોને ઠગવાનો ધંધો હવે છોડી દો; કેમકે નીચ કામ કરનાર એટલી સજાને પાત્ર નથી થતો કે નીચ કામ કરી ઉચ્ચનો ડોળ કરનાર જેટલી સજાને પાત્ર થાય છે.

અમોને તમારા જૈનત્વ ઉપર પણ સંદેહ છે; કારણ કે સંઘાડા બાહાર કાઢેલા અને રાયચંદ્ર મતાનુયાયી સાધુના પદથી પતિત થયેલા જયવિજય નામના સાધુના નીચ લેખને સ્થાન આપો છો. જે ભ્રષ્ટાચારીએ એક વાચસ્પતિજી જેવા શુદ્ધાચારી ગુરૂકુલસેવી શાસન સેવામાં કટીબુદ્ધ મહાત્માને પણ વેશધારી શબ્દ લખતાં જરાપણ આંચકો ખાધો નથી. એવા એકલ વિહારી દુરાચારી શાસન સેવાથી વિમુખ હરામીના લેખો લેવાથીજ તમારી અંદર કેટલું જૈનપણું છે તે શું વાચક વર્ગ જાણી શકતો નથી ? માટે શાસન હેલનાનો અમને ડર છે, આવા ડોલ ઘાલું લેખો લખવાથી તમારૂં કાંઇ વળે તેમ નથી. આગળ ચાલતા તંત્રીજી લખે છે કે, " જેમના માટે સમગ્ર કોમને મોટું માન છે, તેમના શિષ્ય સંપ્રદાયમાંથી એક નવો ઝઘડા પંથનિકળ્યો હોય ઇત્યાદિ ". તંત્રીજીનું .આ લખાણજ એમના અંદરથી શ્રદ્ધા બીજ બળી ગયું હોય એમ સિદ્ધ કરી આપે છે; કેમકે શ્રીમદ્વિજયા-નંદસૂરીશ્વર મહારાજના મિથ્યાત્વ ખંડન કરવાના સ્વભાવને અનુકૂલ ચાલનાર ધર્મપોષક, મિથ્યાત્વ ખંડન કરનાર અને જૈન સમાજના અગ્રગણ્ય તેમના મોટા શિષ્ય સમુદાયને " ઝઘડા પંથ નીકળ્યો " એવા શબ્દો શ્રદ્ધાબીજ બળ્યા વગર કદીપણ લખી શકાય નહીં તંત્રીજી ! આ મંડલ તમારા મિથ્યા છાપાના મતને કોઇપણ કાલે મળી શકે તેમ જણાતું નથી. ગમે તો ઝઘડા પંથ કહો અગર તો રગડા પંથ કહો પણ એ મંડલ તમને નાસ્તિકતામાં અગ્રગણ્ય માની લેવાથી તમારી વાતમાં સમ્મત નથી થવાનું; અને મોટા જૈનમુની સમુદાય તથા આસ્તિક શ્રાવક વર્ગ તમારા કર્ત્તવ્યથીજ તમારૂં સ્વરૂપ જાણી ચુક્યો છે; માટે આ વિષયમાં વિશેષ લખવાની જરૂરાત નથી. કારણ કે, વેશ્યાનો ધંધો લેઇ બેઠેલી બઇરી જેની તારીફ કરે તે પણ તેના જેવી જ હોય. અને જેણીને તે ખરાબ કહે તેજ સુશીલા હોય છે. આ

અમારૂં માનવું યુક્તિ પુરસ્સર છે એટલે અમારે આ વિષયમાં લોકોને વધારે સમજાવવા જેવું કાંઇ રહેતું નથી. વળી તંત્રીજી લખે છે કે, " સદરહુ હેંડબીલમાં અમરવિજયજીએ ન્યાયનો કાંટો લઇ અમારા વિચારમાં પક્ષપાત બતાવવાને પ્રયત્ન કરતાં ઇત્યાદિ ". ॥ તંત્રીજી ! તમારા વિચારો પક્ષપાતથી ભરેલા છે. આ વિષયનું શું તમને સ્વયંભાન થતું નથી ? અને કદિ ન થતું હોય તો કાંઇ આશ્ચર્ય જેવું નથી; કેમકે સંનિપાતના સમયે કરેલા ચાળાઓને સનિપાતથી ગ્રસ્ત થયેલ મનુષ્ય નથી જાણી શકતો તેવીજ તમારી સ્થિતિ થઇ હશે; તેથી તમને માલુમ નહીં પડતું હોય પણ દુનિયા સારી રીતે દેખે છે કે, તમો પક્ષપાતથી ભરેલા છો, કેમકે તમો અમરવિજયજી મહારાજના તરફથી નિકળેલા હેંડબિલનો મુદ્દાસર જવાબ ન આપતાં ખોટા અંગત આક્ષેપો ઉપર ઉતરી પડયા છો. શું આ વાતને દુનિયા નહીં સમજી શકે ? અને તમારા દારૂણ મૃષાવાદનું ભાન નહીં થઇ શકે ? મહારાજશ્રીએ પોતાના હેંડબિલમાં તમારી માયાજાળ ખુલ્લી કરી હતી તેનો કાંઇ પણ યોગ્ય ઉત્તર નહીં આપતાં એક મદ્યપની જેમ શાસનની હેલના કરવાવાળી ખોટી ખોટી બાબતો લખી એવા તો ગપગોળા ગબડાવ્યા છે કે, કોઇ ગૃહસ્થના ઉપર આવું લખાણ હોત તો લોઢાનાં ઘરેણાં પહેરી ભાડા વગરની કોટડીમાં રહેવાનો સમય આવ્યા વગર રહેત નહીં. તંત્રીજી ! આ નીચ જુઠું લખાણ લખી તમોએ તમારી દુર્જનતાનું આખી દુનિયાને ભાન કરાવી આપ્યું છે. યાદ રાખજો સૂર્યના ઉપર ધુળ નાંખવાથી નાખનારના જ ઉપર તે ધુળ પડે છે, પણ સૂર્ય સુધી પહોંચી શકતી નથી. આ વાતનો વિચાર નહીં કરતાં જેમ મનમાં આવ્યું તેમ કેવલ બકવાદ ઉપર કમ્મર બાંધી લીધી. શું તેથીજ તમારા મનની નબળાઇ સિદ્ધ નથી થઇ શકતી ! અરે ! અમને તમો આવા બગભકત છો એ વાતનો પુરેપુરો પતો પણ હવેજ મળે છે, કેમકે જયારે તમો દુધમાંથી પોરા કાઢવા જેવું લખાણ લખી મહામૃષાવાદથી લોકોને ભ્રમ જાળમાં નાખવા મોટા મોટા ગપ્પગોળા ગબડાવો છો તેથી શું તમો શાસન હેલનાથી ડરો છો એમ સિદ્ધ થઇ

શકે ખરૂં ? કદાપિ નહીં. હાં, શાસન હેલનાથી ડરો છો એમ નહિ, પણ શાસન હેલનાને કરો છો એમ તો સિદ્ધ થઇ શકે. ખરૂં તો એ છે કે જેણે પત્રની સાર્થકતા પેટ ભરવાને વાસ્તેજ સમજી છે એવા નાસ્તિક પત્રમાં શાસનની હેલના શિવાય બીજું શું હોય છતાં તમો શાસનસેવાનો ડોળ ધાલો છો એનેજ અમો તમારી બગભક્તિ માનીયે છીએ. આગળ ચાલતાં બેચરદાસના વિષયમાં જે લખાણ લખ્યું છે તે હેંડબિલના ઉત્તર રૂપે ન હોવાથી ઉપેક્ષણીય છે. તેવાર પછી શ્રીજીમહારાજે ખુલાશો કર્યો ઇત્યાદિ આ લખાણ એવું અસત્ય છે કે, જેમ કોઇ કહે કે મેં વંધ્યા પુત્રે ગર્દભ શૃંગનું તીર બનાવી આકાશ કુસુમને વિંધ્યું છે. ત્યાર પછી જૈન તંત્રીનો પક્ષાપ ત " એ નામના હેંડબિલને વાંચી પગથી માથા સુધી જ્વાલા લ.ગી હોય એમ બાવરા બની જઇ, અમરવિજય મહારાજ ઉપર ખોટા આક્ષેપો કરી જેમ કોઇ ડુબતો માણસ તરણાને પકડે તેમ કર્યું છે. એડિટરજી! તમને શું ખબર નથી કે તમારા વાહાલા ખબર પત્રિ એવા અધમ કામના :કરનાવાળા છે કે, જેમનું નામ લેવું પણ ધર્મિષ્ઠ પુરૂષો સારૂ ગણાતા નથી. એવા નીચ આદમી· યોના કહેવાથી તમો લખાણ લખતાં અનેક વાર ફસાઇ લેખોને પાછા: ખેંચી લીધા છે થોડા વખત પહેલાં એક મનુષ્યે ' અમરવિજયજી મહારાજ કાલ કરી ગયા છે અને તેમના કાલ ધર્મ નિમિત્તે પુજાઓ ભણાવી છે ઇત્યાદિ " ખોટા સમાચાર તમોને આપ્યા હતા, અને તમોએ પોતાનાજ છાપામા છપાવ્યા હતા. હવે જરા મગજને ઠેકાણે લાવી વિચાર કરો કે, જે નીચ મનુષ્ય પ્રત્યક્ષ વિરૂદ્ધ તેમના કાલ કરી જવાના નીચ સમાચાર લખે એવો નીચ મનુષ્ય જેમની બાબત જે લખે અથવા કહે તે સાચું કેવી રીતે હોઇ શકે ? આટલો વિચાર કોઇ મૂઢમા મૂઢ હોય તે પણ કરી શકે, છતાં તમો ન્યાયમાર્ગને ભૂલી, અને મહારાજના કરેલા સત્યખં- ડનથી ગાભરા બની જઇ પોતાની મતિકલ્પનાથી અથવા કોઇ નીચ મનુષ્યના કહેવાથી જે કાંઇ લખાણ કર્યું છે તેથીજ તમારી અંદર ન્યાયપક્ષનો તથા શાસન સેવાનો અને જૈનધર્મની થતી નિંદાથી બચવાનો કેટલો પ્રેમ તથા પ્રયત્ન છે તે સારી રીતે માલુમ પડે છે.

આતો સાધુ મહારાજ છે તેથી શાંતિથી બેસી રહ્યા છે; પણ કોઇ ગૃહસ્થને કોઇ નીચના ભરમાયાથી લખી બેસશો તો તમારે ઘણુંજ સહેવું પડશે. યાદ રાખજો કે, તમો એકદમ જવાબના મુદ્દાઓ છોડી આડાંઅવળાં લખાણોથી સત્ય વાર્ત્તાના પક્ષકારોની જાહેર હિમ્મતને બંધ પડવાનો પ્રયત્ન કરો છો; તો શું તેથી બંધ પડી શકશે ? કદાપિ નહીં. તમારા છાપાના નીચ લખાણોથી જનસમાજમાં મોટો ખળભળાટ થયો છે; એવું અનેક લોકોના મહારાજ સાહેબના ઉપર આવેલા કાગળોથી સિદ્ધ થાય છે. માટે હવે "વિનાશ કાલે વિપરીત બુધ્ધિ" જેવું ન કરતા સાચી શાસન સેવાથી આત્માનું હિત કરો. આગળ ચાલતાં પોતાની પોલ ખુલ્લી થઇ જવા પામી અને કાંઇ જવાબ ના આવડયો ત્યારે "લેખકને લેશમાત્ર ભાન નથી ત્યાં તેમને શું સમજાવવું ઇત્યાદિ" ખોટો બકવાદ કરીને છુટી પડયા છે; પણ દુનિયા સારી રીતે સમજી શકે છે, પુર્વધર, શ્રુતધર, કેવલી સમાન આચાર્ય ભગવાન તથા મહારાજા વિક્રમ, કુમારપાલ, પેથડ, જગડુશા, વસ્તુપાલ, તેજપાલ જેવા મહા પ્રભાવિક શ્રાવકવર્ગ આદિએ અંધારૂ તર્યું. અને તેમના ઘુંટણ, છાતિ વિગેરે છોલાઇ ગયા અને લોહી લુહાણ થઇ ગયા; આ વાતને સુચવનાર તમસ્તરણ નામના લેખના લેનાર જૈન પત્રકારમાં શ્રદ્ધાનું બીજ રહ્યું હોય એમ કેવી રીતે માની શકાય ? જયારે આવા મહા પ્રભાવક આચાર્યો આદિના વિરૂધ્ધપણાનો લેખ જે માણસ લેઇ શકે, અને ખુલ્લા દીલથી પુર્વધરોની નિંદા લખનારને પોતાના છાપામા સ્થાન આપે ત્યારે એવા માણસો આધુનિક શાસન પ્રેમી પ્રભાવક મુનિઓના તથા શ્રાવકવર્ગના વિરૂદ્ધમાં લખાણુ લખે એમાં કાંઇ આશ્ચર્ય જેવું નથી.

માત્ર લોકો ઉલટે રસ્તે ન દોરવાઇ જાય એટલાજ માટે આવાં હદપારનાં નીચ લખાણોનો જવાબ આપવાનો પ્રયત્ન કરવો પડે છે, અન્યથા હાથીની પાછળ ઘણાંએ કુતરાં ભસ્યા કરે છે. કોણ પરવા કરે છે ! આગળ ચાલતાં લખ્યું છે કે, "છેવટ તેઓ અમારી સ્વાર્થ વૃત્તિ અને ખોળો પાથરવાની

વાતો બહાર મુકવાની ધમકી આપે છે. આ પ્રમાણે મુનિલબ્ધિવિજયજીના પેમ્ફલેટમા પણ અંતર્ગત એક વાક્ય છે. અને તે માટે અમે કાયદાસર ડેફેમેશન કેશ કરવાના છીએ પરંતુ જ્યારે તેઓ સ્વયમેવ આ ખીના બહાર મુકવાના છે તો અમે તે માટે થોડો વખત શાંતિથી રાહ જોવા દુરસ્ત ધારેલ છે ઇત્યાદિ ' તંત્રીજી ! તમારી અધર્મવૃત્તિ તથા સ્વાર્થવૃત્તિનાં પ્રમાણ ઘણાંખરાં લોકોના કાગળોથી મળી ચુક્યાં છે. તે આ વખતના લેખોત્તરમાં બહાર પાડવામાં આવત; પરંતુ જ્યારે તમો વાચસ્પતિજી મહારાજના ઉપર ડેફેમેશન કેશ માંડવાના છો એવા સમાચાર આપો છો ત્યારે હવે આવા પાકા મુદ્દાઓ હમણાં સાધારણ વખતે બહાર નહીં પાડતાં તમારા માંડેલા ડેફેમેશનમાંજ બહાર પાડવા વધારે ‧ અગત્યનું સમજી તેઓ પણ તમારા ડેફેમેશનની રાહ જોઇ હમણાં શાંત બેસી રહેવાનું વધારે પસંદ કરે છે, શ્રીમદ્ આત્મારામજી જૈન પાઠશાળાના સેક્રેટરી શાહ; જેઠાલાલ ખુશાલચંદ ડભોઇ.

॥ जैन तंत्रीनी जूठी जाळ ॥

તા. ૫-૧૦-૧૯ ના જૈનપત્રમાં તંત્રી મહાશય લખે છે કે, " ઇંદ્રજાળમાં આહુતિની નોટ માટે પડદામાં રહેલ ઝઘડા મંડળવતી નવા નામે રદીયો લખી પેમ્ફલેટરૂપે બહાર પાડયો છે " આવાં નીચ લખાણ કરવાવાળા તંત્રીઓથી શાસન સેવાના બદલે શાસન નિકંદન થવા સંભવ રહે છે. કેમકે-જેમની અંદર એટલો વિપર્યાસ થયો હોય છે કે, જે નીચ વ્યક્તિઓ હોય છે, તેજ તેમના હૈયાના હાર થઇ પડે છે. અને જે ઉંચ વ્યક્તિઓ છે, તેજ તેમને ઝઘડા મંડળ તરીકે ભાસે છે. કર્મની ગતિ વિચિત્ર છે ! ઘુવડને પ્રાકૃતિક સૌંદર્યને પોષનાર પ્રકાશી સૂર્ય ઠીક નથી લાગતો, અને ડરામણું અંધકાર એનું પ્રીતિસ્થાન થઇ પડે છે.

એક શ્રેષ્ટ મંડળે શાસન સેવામાં કટીબદ્ધ થઇ યથાસમયે શાસન સેવા બજાવી છે, એવા મંડળને ઝઘડામંડળ લખી તંત્રીજીએ પોતાની અંદરનું શ્રદ્ધા બીજ સર્વથા બળી ગયું છે. એ વાતનું લોકોને પુનર્ભાન કરાવ્યું છે. ત્યાર પછી તંત્રીજી લખે છે કે—

" આવા શીંગ પુંછ વિનાના લખાણો માટે લક્ષ આપવા અમારા પાસે વખત તેમ જગ્યા નથી. " આ વાત સત્ય છે કેમકે અમારા લખાણને શીંગ નથા પુંછ નથી, પરંતુ તમો તમારા લખાણને શીંગ પુંછવાળું સાબીત કરો છો તો તે શીંગ પુંછવાળું તમારૂં લખાણરૂપ પશુ લોકોના શ્રદ્ધારૂપ ધાન્યને ચરી જાય છે. તેના બચાવ માટે અમારો લખાણરૂપ દંડો એને હઠાવવાનો પ્રયત્ન કરે છે, તે લખાણરૂપ દંડમા શીંગપુંછ નજ હોય એ સ્વાભાવિક છે. પરંતુ એ ઉપકારી કેટલો છે. એનો જરા વિચાર કરતા તો તમારા લખાણરૂપ પશુને બંધ કરી નિરંતર ઉપકારી અમારા દંડાને વિરમવા તક આપતા પરંતુ તેમ થવા પામ્યું નથી. એમાં અમો તમારોજ દોષ માનીએ છીએ ત્યારપછી " એકને ઢાંકવા બીજો ને બીજાને ઢાંકવા ત્રીજો ઉભો કરવા જેવું થતું હોય " ઇત્યાદી—આ લખાણ પણ પોતાની કરેલી ખોટી વાતોનો જવાબ ન આપતાં ઢાંકપીછોડો કરવા જેવું છે. કેમકે—કોઇ મનુષ્ય પોતાના જાહેર નામથી જે દલીલો રજુ કરે, પ્રથમથીજ ગપ્પ ગોળા ગબડાવનારની ફરજ છે કે, તેનો યોગ્ય ઉત્તર આપે. માટે હવે ખોટાં બહાના કાઢી નાસીપાસ બનવાનો પ્રયત્ન કરવો તે ઠીક નથી. જો તમો શાસ્ત્રપ્રમાણથી વાચસ્પતિ જી મહારાજના લેખનું ખંડન કરતા કે અમુક પ્રમાણ ઠીક નથી તો તેનો જવાબ વાચસ્પતિજી તમને આપતા; પરંતુ જ્યારે તમોએ એમના લખાણને નિંદ્યું ત્યારે તે પોતાના લેખને ગંભીર છે એમ જાહેર કરતા સ્વમુખથી અને સ્વલેખનીથી પોતાના લેખની સ્તુતિ થઇ જાય એ માટે વાચસ્પતિજી સ્વયં તમારા લેખનો રદીયો નાઆપે તે સહજ છે. અને એમના લખેલા

ઉત્તમ પુસ્તકના ગુણુથી રંજીતહ્રૃદય થઇ શ્રીઅમરવિજયજી મહારાજે જવાબ આપ્યો તે વાસ્તવિકજ હતું. જ્યારે તમોએ એમના લેખના પણ અસલી મુદ્દાઓ ઉપર ચરચા ન ચલાવતાં. આડો માર્ગ લઇ એમના અંગત જુદા આક્ષેપો ઉપર પડયા, ત્યારે પોતાના હાથથી પોતાના બચાવ માટે પ્રયત્ન કરતા કેટલાંક પ્રશંસાનાં વાકયો આવી જાય તેથી તેમણે પણ ઉત્તર દેવામાં મૌનાવસ્થા પકડી તે યોગ્યજ છે, પરંતુ આવા ઉત્તમ વૃદ્ધ પુરૂષો માટે કોઇ બેપાયાદાર નીચ માણુસના કેહવાથી (કેમકે તમો અમરવિજયજી મહારાજના માટે જે લખો તે તમારા અનુભવથી લખો છો એમ તો કોઇ પણ સ્વીકારે તેમ છેજ નહીં.) તમો જેમ તેમ બકવાદ કરો એનો ઉત્તર આપ્યા વગર અમારાથી નજ રહી શકાય એ સ્વાભાવિક છે. માટે આ ચણતર ન્યાયનુંજ ગણાય. તેમ છતાં પક્ષપાતનાં પડળ આવવાથી કદિ તમોને અન્યાયનું માલમ પડે તો તેમાં તમારે તમારા કર્મ રોગનુંજ નડતર ગણવાનું છે. ત્યારપછી મુનિ શ્રીઅમરવિજયજી મહારાજની બાબત તમો લખો છો કે અમે રૂપીએ આના જેટલું લખ્યું છે. અને અમો કહીએ છીએ કે તમોએ શૂન્યનો પર્વત કર્યો છે, પણ આ વિષયમાં હવે વધારે લખવાની જરૂર નથી કેમકે " ખુદ આચાર્યશ્રી જો દર્દ દાબવા અને નિ.પક્ષ રીતે કંઇ વ્યવસ્થા કરવા ખાત્રી આપતા હોય તો તે ફરમાવશે ત્યારે અમો તમામ સપ્રમાણ પુરાવા રજુ કરવા તૈયાર છીએ. " તમારા આ લખાણને વાંચીને દર્શન તથા ચારિત્રમાં થએલા સડાઓ પોતાના આજ્ઞા પાલનાર સાધુઓમા દેખી તે સડાઓને નહીં દબાવતા તે તે ગુનાઓની શિક્ષા કરનાર ન્યાયપ્રિય શ્રીમદ્વિજયકમલસૂરિજી મહારાજે તા. ૮–૧૦–૧૯ ના રોજ તમારા વિશ્વાસના માટે પોતાની સહીથી એક પત્ર જવાબી રજીષ્ટરદ્વારા તમારા ઉપર મોકલેલ છે. જેમાં મહારાજશ્રીએ ફરમાવેલ છે કે જો તમો અમરવિજયજીની બાબત સપ્રમાણ પુરાવા રજુ કરો તો અમરવિજયજીને અમો ઉચિત શાસન કરવા તૈયાર છીએ, માટે તમો આશો વદિ ૦)) સુધી ડભોઇમાં આવી પ્રમાણ રજુ કરો પરંતુ એટલું સ્મરણમાં

રાખવું કે અમરવિજયજીના અંગતદ્વેષીઓનું કથન પ્રમાણ વગર કદાપિ માનવામાં નહીં આવે.

અને જો તમો અમારા સમક્ષ નહીં આવતાં છાપામાં જે છપાવશો તે વાતો ઉપર ધ્યાન દેવામાં નહીં આવે. કેમકે છાપામા એવા વિષય લેનાર અવશ્ય દ્વેષી સિદ્ધ થાય છે અને દ્વેષીઓની વાત ઉપર ધ્યાન આપવું તે ન્યાયસર ન કહેવાય તે ધ્યાનમાં રાખશો. અહીં આવવામા તમો કોઇ પણ પ્રકારનો ભય ન રાખશો. એ વિષયની શ્રીજી મહારાજે તમને ખાત્રી આપી છે તેમ અમો પણ તમને ખાત્રી આપીએ છીએ કે તમારે કોઇપણ પ્રકારથી અહી આવવામા હરકત નહીં સમજતાં નિશ્ચિંત રેહવું કેમકે તમારૂં કોઇ પણ પ્રકારે અપમાન થાય તો એની જુમ્મેદારી અમો અમારા શિર ઉપર લઇયે છીએ. તમો અમારી જૈનશાળાની ખાતાવહી તથા દલપત નારાયણાદિ જે વાકય લખી લોકોમાં ખોટી અસર પાડવા ખોટા ગપ્પ ગોળા ગબડાવો છો તેનાથી તમારૂં ભવિષ્ય બગડશે એનો વિચાર કરી લેજો. કેમકે અમારી વહી અને દલપત નારાયણની સાક્ષી શ્રીઅમરવિજયજી મહારાજના શુદ્ધ વર્ત્તનનો પરિચય આપે છે તે દ્વારા તમો તેમનું અશુદ્ધ વર્ત્તન સાબિત કરવા ધારોછો તેજ તમારૂં પથ્થર ઉપર કમલ પેદા કરવા જેવું વર્તણુક સાબિત કરી આપે છે. આગળ વધી લખો છો કે, "સત્યાગ્રહીનો લેખ છે, તે વાચી શાત થશો તેમ આશા છે" તંત્રીજી! આ આશા નિરાશારૂપેજ પરિણત થવાની તેમ ખાત્રીથી સમજજો. કેમકે એક તરફથી અશાતિવર્દ્ધક શબ્દો ઉલ્લેખવામા આવે અને બીજી તરફથી શાંત થશો એમ લખવામા આવે આ શાતિ કરવાનો કેવો પ્રકાર ? અગ્નિમાં–ઘી હોમી શાંતિ કરવા જેવો ખરો કે નહી ? તે જરા વિચાર કરશો. સત્યાગ્રહીના નામે તંત્રીના પક્ષપાતી અસત્યાગ્રહીએ પોતાના મગજ અને હાથને લેખ લખવામાં જે પરિશ્રમ આપ્યો છે (પક્ષપાતથી ભરેલ લેખ હોવાથી) તે સર્વથા નિરર્થક છે. મરણના જૂઠે જૂઠ સમાચાર આપવાવાળા નીચમનુષ્યની વાતો માની જૈન તંત્રીને શૂર ચઢેલું જોઇ અમોએ આગળ વધતાં કંઇ

ફસી ન જાય એટલાજ માટે તંત્રીજીને તે અધર્મ કર્મ કરનારના વિશ્વાસથી આડું અવળું ન વેતરવા ભલામણ કરી હતી. ત્યારે અસત્યાગ્રહી પડદાબીબી બોલી ઉઠયાં કે તમો સર્વજ્ઞ છો કે ? વાહ પડદાબ બી ! તારી બુદ્ધિને. એક તંત્રીના શિવાય બીજા સર્વજ્ઞજ (તંત્રીને કોણ કે શુ સમાચાર આપે છે) તે વાતને જાણી શકતા હશે કેમ વારૂ ? આ તમારી બુદ્ધિ તો તમને પાર્લા- મેંટની મેંબરી મેળવી આપે એવી લાગે છે. અરે મુર્ખાનંદ ! તારા ઢાંકપી- છોડાથી શું થવાતું છે. અમોને પુરી બાતમી મળી છે કે જૈન તંત્રી જેના જોર ઉપર કુદી રહ્યા છે અને પ્રેમથી મળે છે અને આવા નીચ સમાચાર જે લખાવે છે તેજ મરણના સમાચાર દેવાવાળો નીચ માણસ છે. હવે પછી આવા કુકર્મનું થોગ ફલ તે પણ થોડા કાલમાં સહન કરશે.

પડદાબીબીજી ! તમોએ વચસ્પતિજીના બનાવેલા પુસ્તકને મલીન પુષ્પ જાહેર કર્યું છે એ વિષયમા તમોએ ગેંગાની પ્રકૃતિનું અનુકરણ કર્યું છે, માટે દુરવાસનરૂપ દુષ્ટ ગોળીને બહાર કાઢી નાખશો ત્યારેજ તમને દેવદ્રવ્યાદિ સિદ્ધિ નામના ખુશબોદાર કમલની ખુશબોનું ભાન થશે. માવજી દામજીના લેખથી જેટલી ખોટી અમર થવા સંભવ છે એટલો નોંધથી ફાયદો નથી, જયવિજય વગેરેના લેખોથી પણ તેમજ સમજવાનું છે. પ્રથમ જાણીને મળમાં પગ નાખી પાછળથી ધોનારની મુર્ખતાની જેમ તમારા બતાવેલાં ઓઠા તમારી મુખતાને સિદ્ધ કરે છે, અને જો ધર્મશ્રદ્ધા હોય તો એવાં લખાણ કદી ન લેતા અમારૂં આ લખવુ યુક્તિસર છે. આવા ખેદકુરી ભરેલા લખાણોનો લખવાવાળો સ્વભાવથી અસત્યાગ્રહી પણ નામનો સત્યાગ્રહી કોણ હશે આ વિષયમા ઘણો વિચાર કર્યો પણ વેશ્યાની પુત્રીનો પિતા હાથમાં આવે તો અમારા ઢોંગી સત્યાગ્રહીનું સ્વરૂપ હાથમાં આવે એવું થઇ પડયું છે. તો હવે મહેરબાની કરી અમારા ઢોંગી સત્યાગ્રહી પોતાનો પુરો પરિચય આપી વેશ્યા પુત્રીના લાગુ પડતા દૃષ્ટાંતથી દૂર રહેવા પ્રયત્ન કરશે, કે જેથી લોકોને તેમના પ્રમાણિકપણા ઉપર વિચાર કરવાનો સમય મળે આ અંકના જૈનપત્રના ૬૩૧મા પાના ઉપર દેવદ્રવ્યાદિ સિદ્ધિની

ભાષા એવા હેડિંગથી યુવક મંડળે જે ભાષા સંબંધી નોંધ લીધી છે. તથા બીજા પણ જૈન જૈનેતર તંત્રીએ ભાષા ઉપર વિચાર કર્યો છે એ વિષયનો ઉલ્લેખ કરી લેખકે વાચસ્પતિજી મહારાજના તરફથી નિકળેલ પુસ્તકમાં શબ્દો સારા નથી ઇત્યાદિ આલેખ્યું છે. પણ આવા ધર્મશૂન્ય જૂ-મંડળ જેવા યુવક મંડળની નોંધથી મળવાનું શું હશે એ અમારી સમજમાં નથી આવતું, તંત્રી હોય કે મંત્રી હોય, મડળ હોય કે બંડળ હોય જે દેવદ્રવ્યાદિ સિદ્ધિ નામની ઉત્તમ પુસ્તકની ભાષાને નિંદે છે તે અકલના દુશ્મનોનું મગજ અજ્ઞાનરૂપ કીડાઓથી ખવાઇ ગએલું હોવાથી, અથવા તો આગમ માર્ગ અને આચાર્યો ઉપરથી શ્રધ્ધા ખસી ગયેલી હોવાથી, યા તો તેમનામા હિજડાવૃત્તિ હોવાથી તેમની પ્રવૃત્તિ થવી જોઇએ. નહીં તો જે બેચરદાસે ચતુર્દશ પૂર્વધારી મહાત્માઓએ અંધારું તર્યું. અને તે લોહીલુહાણ થઇ ગયા, શ્રી મહાવીર પ્રભુએ પણ ક્રિયા ઉધ્ધાર કર્યો, માંસ ખાનાર અને મદિરા પીનાર ભગસેવી વ્યભિચારી તાત્રિકમતનો જૈનસાધુઓમા અસર થયો, આવાં ખોટાં કથન કરી જૈનશાસનમાં મહા જુલમ ગુજારનાર વર્ત્તણુંક કરેલી છે. એનો કાઇ પણ વિચાર નહીં કરતા વાચસ્પતિજી મહારાજની ભાષા આવી છે ને તેવી છ. એવું કથન કદાપિ ન કરત. આવા હિજડાવૃત્તિ ધરનાર, આર્ચાર્યોની ઉપર ભકિતશૂન્ય, ધર્મશૂન્ય અને દેવદ્રવ્યાદિ સિધ્ધિ નામના પુસ્તકની ભાષાના નિદનારાઓને હું પ્રશ્ન કરૂં છું કે, કોઇ વખત શ્રીજિન મંદિરમાં એકલા સાધુ ઉભા હોય અને તે વખતે કોઇ નીચ આદમી ભગવાનની મૂર્તિને ખંડિત કરવા લાગે તો તે વખતે સાધુ મહારાજ તે નીચ માણુસના ઉપર એકદમ પીત્ત પ્રકૃતિથી કરડી શિક્ષા કરવાને તત્પર થઇ જાય તો તે શિક્ષાને તમે યોગ્ય માનશો કે નહીં ? જો આ વાતનો ઉત્તર તમો નકારમાં દેશો તો હું તમને ધર્મશૂન્ય હિજડાવૃત્તિવાલાજ કહીશ, અને જો " હા " કેહેશો તો બેચરદાસે જે કામ કર્યું છે તે ઉપર આપેલ નીચ આદમીના દૃષ્ટાંતથી કમી નથી. હવે વિચાર કરો કે, વાચસ્પતિજી મહારાજે જે શબ્દો લખ્યા છે તે ન્યાય પુરઃસર કેમ ન કહેવાય આતો કાઇ

નથી પણ જો કોઇ જૈનધર્મી રાજા હોતતો આવા તીર્થંકર પ્રભુની તથા આચાર્યોની ઘોર આશાતના કરવાવાળાને નાક, કાન કાપી મોઢું કાળું કરી ગધેડા ઉપર બેસાડી ગામમાં ફેરવી તમામ લોકોની પાસે એવાના મુખમા થુંકાવી કાલા પાણીની સજા કરત. જ્યારે આવી સ્થિતિના માણસ માટે એના લખેલા શબ્દો ઉપરનો કાંઇપણ વિચાર ન કરે અને જનરત્ન વ્યાખ્યાન વાચસ્પતિ શ્રીલબ્ધિવિજયજી મહારાજના શબ્દો ઉપર કેવળ લખાણ કરવા મંડી પડે એવા પક્ષપાતી અક્કલના બારદાન દુર્ભાગ્ય શેખર યુવક મંડળ આદિથી વાચસ્પતિજી મહારાજ કદીપણ ડરવાના નથી. અગર કોઈ કહેકે ગૃહસ્થ ગમે તેમ લખે પણ સાધુ તો સમતાજ રાખે તો મહારાજશ્રીના મુખથી મને ખુલાસો મળ્યો છે કે, " એવું કહેવાવાળાઓએ ઉપદેશ સપ્તતિ " દ્વાદશ કુલક " જ્ઞાના સૂત્રનું ઓગણીસમું અધ્યયન " શ્રી ભગવતી સૂત્ર આદિ શાસ્ત્રો સાભળવા કે જોવા માલમ પડશે કે આવા ચઉદ પૂર્વધરોના નિંદકોનું અપમાન કરવું તે સાધુને અયોગ્ય નહી પણ યોગ્ય છે " માટે અમો વાચસ્પતિજી મહારાજને હજારો ધન્યવાદ આપીએ છીએ કે જેમણે લોકનાં મનરંજનનો ખ્યાલ નહીં રાખતાં ધર્મરંજન કર્યો છે. આવા પુરૂષોની શાસનમા ઘણી જરૂરાત છે કે જે ગંગાદાસ જમનાદાસની રીતિથી હજારો માઇલ દૂર રહે છે. ઇતિ શમ્ ।

શ્રીમદ્ **આત્મારામજી** જૈન પાઠશાળાના સેક્રેટરી **શા. જેઠાલાલ ખુશાલચંદ મુ૦ ડભોઇ.**

॥ जैन तंत्रीनी वांकी चाल ॥

સજ્જનો ! ઘણા ખેદની સાથે લખવું પડે છે કે, અમોએ અનેક પ્રકારે જન તંત્રીનું વિપર્યાસપણું દૂર થવા માટે ઉપાયો લીધા, પરતુ જ્યાં રોગની અસાધ્યતાનું પરિણામે માઠુંજ ફળ ભાગ્યમાં અનુભવવાનું હોય ત્યાં મનુષ્ય જાતના ઉપાયોથી કંઇએ વળતું નથી. છતા પણ અમારી હિત લાગણી અમને આવાં અસાધ્ય કાર્ય કરવાને માટે પ્રેરણા કરવાથી ચુકતી નથી. અમો માનિએ છિયેકે, આ પ્રેરણા સફલતાને પ્રાપ્ત કરે તો હજારો મનુષ્ય રોગના ભોગ થતાં અટકી શકે. કારણ કે એક રોગી તંત્રી પત્ર રૂપ વિષજંતુ દ્વારા હજારો રોગી પેદા કરી શકે; જેમકે બેચરદાસને સંઘ બહાર કરવા રૂપ અમદાવાદના સ્તુત્ય કાર્યના અનુમોદનરૂપ આરોગ્યતાથી હીન તંત્રી જૈનપેપરના દરેક અંકમાં ફલાણા ગામનો ફલાણો આમ લખે છે; અને ફલાણા ગામથી ફલાણો તેમ લખે છે; આવા તદ્દન ખોટા સમાચારો લખી ભોળા લોકોની શ્રધ્ધા બગાડી બિચારાઓને મિથ્યરોગનો ચેપ લગાડે છે. તંત્રી જાણેછે કે, હું ચલાવોને ગપ ! કોણ ઓફીસમાં જોવા આવનાર છે અને આવશે તો ગામ હોય ત્યાં ઢેડવાડો હોય એટલે કોઇ હલકા માણસોથી બેચાર ગામની ઠામ ઠેકાણા વગરની પત્રિકાઓ મંગાવી રાખીશું, અથવા જુદા જુદા છોકરાઓની પાસે લખાવી લઇ કોઇમા સત્યાગ્રહી તો કોઇમાં ભિક્ષુક અને કોઇમા સચ્ચિદાનંદ નામોથી પ્રપંચ જાળ માડીશું, પણ આપણેતો જેમ એક નાક કટ્ટો નાકકટ્ટાનું મંડળ વધારે તેમ મિથ્યા રોગીયોનું મંડળ વધારવાનું છે, તે વધારીશુજ. માટે જો આ મૂલ રોગી તંત્રીને દવા લાગુ પડે તો હજારોનું કલ્યાણ થાય; પરંતુ આ આશા હજુ સુધીતો નિરાશા રૂપજ પરિણત થતી રહી છે કદાચ ભવિષ્યમાં કાંઇ ફાયદો થાય તેવા આશયથી અમો અમારી લેખનીને પુનઃ સતેજ કરીયે છીએ. તા. ૧૯ મી ઓકટોબર ૧૯૧૯ના જૈનપેપરમા અમારી તરફથી નિકળેલ જનતંત્રીની જુઠી ઝાળના અસલ મતલબનો લાભ ન લેતા તંત્રીએ વાંકી

ચાલ ચાલવી શરૂ કરી છે. તંત્રીજીની આ ચાલ આ વખતેજ જોવામાં આવી છે એમ નથી; કેમકે પ્રથમ "જૈન તંત્રીનો પક્ષપાત" નામના હેંડબિલના જવાબથીજ તેમને પોતાની વક્રગતીનો પરિચય અમને આપવો શરૂ કર્યો છે કેમકે તા. ૭ સપ્ટેબર ૧૯૧૯ ના જૈન પત્રમાં તેમણે લખ્યું હતું કે; તેઓ (બેચરદાસ) કાંઇ નવું શાસન પ્રરૂપવા કે શાસ્ત્ર રચવા માગતા નથી, તેના જવાબમાં એક મહારાજશ્રીએ તેમને પ્રથમ હેંડબિલમાં પ્રશ્ન કર્યો હતો કે; તેજ સભા (જૈન ધર્મ પ્રસારક સભા) માં બેચરદાસે પિસ્તાલિસ આગમ માનવાં છોડી દીધાં અને હું અગીઆર આગમને માનુ છું; અને તેમાં પણ મિશ્રણ થયેલું છે; એવા શબ્દો જે કહેલા તે નવીન મત (શાસન) કહેવાય કે પ્રાચીન ? તેજ અંકના જવાબમાં ફરી લખવામાં આવ્યું હતું કે અમને એડીટરના મિથ્યાભાવ ઉપર પુર્ણ ખેદ થાય છે કે; પૂર્વાચાર્યો ઉપર કરેલો બેચરદાસનો હુમલો એમને મીઠો સાકર જેવો લાગ્યો કે જેથી તેના ઉપર કાંઇપણ નોધ લીધી નહીં (તે વાજબી કેહવાય ખરૂં ?) ત્યારપછી તેજ અંકમા તંત્રીએ લખ્યું હતું કે; "લેખકે પોતાને આવડયાં તેટલાં પૂર્વાચાર્યો અને સમર્થ પુરૂષોનાં નામો લખી ભોળી અને શ્રધ્ધાળુ જૈનપ્રજાને ઉશ્કેરવાને જાણે તેઓને (પૂર્વાચાર્યો આદિને) પંડિત બેચરદાસે પોતાના ભાષણમાં નિંદ્યા હોય ઇત્યાદિ" આના ઉત્તરમાં તેઓની (તંત્રીની માયા જાળનો પ્રકાશ કરતાં મહારાજશ્રીએ જણાવ્યું હતું કે, તંત્રીજી ! વાચસ્પતિજીએ એવું કયાં લખ્યું છે કે બેચરદાસે પોતાના ભાષણમા પૂર્વાચાર્યોને નિંદ્યા છે, એમણે તો એમ લખ્યું છે કે તા. ૨૫ મી મે સન ૧૯૧૯ ના પૃષ્ટ ૩૭૩ ના જૈન પેપરમાં જે તમસ્તરણ નામનો લેખ લખ્યો છે એમાં બેચર દાસે દેવ દ્રવ્યાદિ સિધ્ધિ નામના પુસ્તકમાં લખેલા શ્રુતધર મહારાજાઓની પણ નિંદા કરતાં આચકો ખાધો નથી. કેવલી સદશ ચતુર્દશ પૂર્વધર શ્રી સ્થુલભદ્ર મહારાજ, દશપૂર્વી વજ્રસ્વામી મહારાજ, આર્યરક્ષિતસૂરિ, પાંચસો ગ્રંથના કર્તા ઉમાસ્વાતી મહારાજ, પન્નવણાકાર શ્યામાચાર્ય મહારાજ,

જિનભદ્રગણિ ક્ષમાશ્રમણ મહારાજ આદિ જે જે શ્રુતધરો થયાછે તે; અને અદ્યાવધિ થયેલ સમસ્તાચાર્યો વગેરેને અંધારૂં તરવાવાળા અને છાતિ ગોઠણ ઘસાવાથી લોહી લુહાણ થનારા પ્રસિધ્ધ કર્યા છે. કેમકે તમસ્તરણમાં લખેલું છે કે; મહાવીરના નિર્વાણને પ્રાયઃ બે ત્રણ કે ચાર પાચ સૈકા જેટલોવખત વીતે જૈન સમાજના વિશેષભાગે તમસ્તરણ આરંભ્યું હતું અને તે ઠેઠ અત્યાર સુધી ચાલ્યું આવ્યું છે ઇત્યાદિ. હવે જૈન પત્રકારની માયાજાલ અને પક્ષપાતનો જૈન સમાજને અનુભવ થયો હશે. કેમકે પોતેજ તમસ્તરણ નામનો લેખ છાપે છે; અને પોતેજ પાછા બેચરદાસને આચાર્યોની નિંદા કરવાના દૂષણથી અલગ જાહેર કરવાનો પ્રયત્ન કરે છે, આ તે કેવો પક્ષપાત! કાંઇ વિચાર પણ કરે છે કે મનમાં આવે તેમ ધસેડયાજ કરે છે. અમારા પાઠકગણોને પત્રકારના પક્ષપાતના સ્વરૂપનું ભાન થઇ ગયું. હવે એમની માયા જાલનાં દર્શન કરો. એડીટરની માયાજાલ એ છે કે તેઓ બેચરદાસે પોતાના ભાષણમાં આચાર્યોને નિંદ્યા નથી એમ લેખ લખી લોકોને ભ્રમજાલમાં નાખે છે, પણ વાચસ્પતિજીએ તો તમસ્તરણ નામના લેખમાં પૂર્વાચાર્યો અને સમર્થ પુરૂષોને નિંદ્યા એમ જાહેર કરેલું છે. ત્યારે ભાઇસાહેબ ભાષણનું નામ લખી અજાણ લોકોને ભુલવવાનું કરે છે. એજ એમની માયજાલનું પ્રસ્તરણ છે. તાત્પર્યમાં એટલુંજ સૂચન કરવા માગીયે છિએ કે તા. ૭ સપ્ટેમ્બર ૧૯૧૯ ના લેખનું જૈનતંત્રીનો પક્ષપાત નામના હેંડબિલમાં યુક્તિસર ખંડન કરવામાં આવ્યું હતું તેમાં ઉપર સૂચના કરેલા પાકા મુદ્દાઓને પોતે (તંત્રી) જુઠા હોવાથી તોડી ન શકયા અને મૂળ મુદ્દાઓની ચર્ચાને બાજુ ઉપર મુકી એક વ્યક્તિગત આક્ષેપો-ઉપર ઉતરી પડયા. શું આનું નામ વાંકીચાલ ન કહેવાય? અને આવી ચાલ ચલણવાળા આદમીનો કોઇપણ વિશ્વાસ રાખી શકે ખરો? કદિપણ નહી. આથી એમ સિદ્ધ થાય છે કે તંત્રી મહાશય પ્રથમથીજ આડે માર્ગે દોરાઇ ગયેલ છે. જો આ વાતમાં સંદેહ હોય તો તા. ૨૧ મી સપ્ટેમ્બર સ. ૧૯૧૯ નું જૈનપત્ર અને જૈનતંત્રીનો પક્ષપાત નામનું હેંડબિલ તપાસી જુઓ! એવીજ રીતે

જૈનતંત્રીનો મિથ્યા પ્રલાપ નામના હેંડબિલના જવાબમા પણ બનવા પામ્યું છે; અને છેવટમાં જૈન તંત્રીની જુઠી જાળના જવાબમા તા. ૧૯ મી ઓકટોબ્બર ૧૯૧૯ ના જૈનપત્રમા પણ પ્રથમ કરતા વધારે વાંકી ચાલ ચાલવી શરૂ કરી છે તેથીજ આ હેંડબિલનુ નામ જૈન તંત્રીની વાંકી ચાલ રાખવામા આવ્યું છે. અમારા નામે એક વધુ હેંડબિલના મથાળાવાળા લેખમાં તંત્રીજી પોતાની સ્તુતિ કરનાર નામના સત્યાગ્રહીને નિઃપક્ષ તથા પવિત્ર આત્મા લખી એમની સ્તુતિ કરવાનો બદલો વાળતાઃ—

ऊष्ट्रकाणा विवाहे तु गर्दभा वेदपाठकाः
परस्परं प्रशंसंति अहोरूपमहो ध्वनिः १

જેવું કર્યું છે એટલે આ વિષયમાં પણ કાંઇ લખવા જેવું રહેતું નથી ત્યાર પછી તંત્રીજીએ લખ્યું છે કે × × ના મરણના સમાચાર દેવાવાળો વ્યકિત તે હાલના તેમના જીવન માટે અજવાળું પાડનાર વ્યકિતઓમાંનો એક પણ નથી. આ લખાણ કેવલ અસત્યતાથી ભરેલું છે. જે માણસે મરણના સમાચાર લખ્યા છે; તેજ માણસ તમને સૂચવનાર છે. હાં ! તમો કદિ ભોળી પ્રકૃતિથી પત્રોમાના નામના ભેદોથી એમ સમજતા હશો કે મરણના સમાચાર આપનારનું નામ ભિન્ન છે, અને કહેવા વાળો વ્યકિત ભિન્ન છે, તો તે કારસ્થાનીની માયા જાળથી તમો ભરમમાં પડી એમ માનતા હશો ? પણ અમો સારી રીતે જાણીયેછિએ કે; બન્ને સમાચારોનો દેવાવાળો મૂળ રૂપે એકજ છે હાં ! એના સહવાસમાં આવી ભ્રાંત થયેલા અને વસ્તુ સ્વરૂપના અજાણ કેટલાક અન્ય પણ હોય તો તેનું કારણ પણ તેજ છે એ વાત નિશ્ચયથી સમજજો. ત્યારબાદ તમોએ ' અમારા ઉપર લખેલો ખાનગી પત્ર પ્રગટ થયો છે ' ઇત્યાદિ જે લખ્યું છે. તેના જવાબમાં માત્ર એટલુંજ સમજવાનું છે કે તે પત્રનો વિષય કાંઇ એવી ખાનગી બીનાવાળો ન હતો કે તમે પોતાના છાપામાં જે બીના ન લખી હોય એટલે એ વિષયનો ચર્ચા ચલાવવી તે અપ્રસ્તુત છે. આગળ ચાલતાં તંત્રી

મહાશય લખે છે કે "પુરાવા સાથે ત્યાં જવાની સઘળી તૈયારી કરેલી છતાં એક ખાનગી પત્ર સાધારણ વ્યક્તિથી જાહેરમા આવી શકે છે. ત્યાં જવું તે હિતાવહ ન જણાયાથી તેના કારણો સાથે આચાર્ય શ્રીને વિગતવાર ઉત્તર લખેલો છે." તમારૂં આ લખાણ "નાચવું નહિ એટલે આંગણું વાંકુ" જેવું છે આચાર્ય શ્રી મહારાજ ઉપર તમોએ પત્રમાં જે બીના લખી છે તે બીના "અમારા નામે એક વધુ હેંડબિલ" મા લખેલી બીનાને સર્વથા મળતીજ છે એટલે આ લેખના ખંડનથીજ પત્રમાં લખેલી બીનાનું ખંડન થઇ જાય છે માટે એ વિષયમાં વિશેષ ઉહાપોહ કરવા જેવું કાંઇ રહેતું નથી. તંત્રીજી ! મહારાજ સાહેબ તમારા જેવાના ઉપર જે કાગળો મોકલે તેનું રજીષ્ટર તો અમારા જેવા શ્રાવકોના હાથેજ થાય એટલે સહજપણ અમને કાંઇ જાણવા જેવી બીના હોય તો જણાવવા કૃપા કરશો એવી પ્રાર્થના કરવા સમય મળે ત્યારે આવી ચાલતી ચર્ચાના પ્રસ-ગની વાતો (તમો ખોટી વાતો છપાવો છો તે વાતો) ના જાણનાર અમોને મહારાજશ્રી તે પત્રમાં લખેલી સામાન્ય બિના જાહેર કરે અને અમો એ વાતને ભવિષ્યમા લાભ થતો સમજી છપાવીએ એમા તમારા જેવા છાપા ચલાવનાર તંત્રીને ડભોઇમાં આવવું હિતાવહ ન જણાય આ વાતને કયો બુદ્ધિમાન માની શકશે ? અમોને આ તમારૂં લખાણ બિલકુલ યુક્તિ શૂન્ય ભાસે છે; કેમકે છાપામાં આવેલી રજીષ્ટર પત્રની વાત જેની પાસે પુરતા પુરાવા હોય એને ઉત્તેજક છે પણ પ્રતિબંધક નથી હોં ! જુઠા ગપ્પ ગોળા ચલાવનારનાં તો હાજાં નરમ કરી નાખે એવી ખરી ! અને એજ કારણ છે કે તમો પત્ર પ્રગટ થયાનું ખોટું બહાનુ કાઢો છો અને ડભોઇમાં હાજર ન થવાના માટે "એક વ્યક્તિના જીવનના ક્લિષ્ટ પ્રસંગોની તપાસ શાસન હિત જળવાય તેમ શાંતિથી ગુપ્ત રીતે કરવાનો શુદ્ધ હેતુ જાળવી શકે તેવી સ્થિતીમા તેઓશ્રી નથી" એવું જે કારણ કલ્પ્યું છે તેવી તમારા હૃદયની સ્થિતિ નથી. એટલે તે કેવલ ધૂર્તતાનું સૂચક છે આ વાતની પુષ્ટિમાં તા. ૨૧ મી સપ્ટેમ્બર સન ૧૯૧૯ ના

જૈનપત્રમાં મુદ્દાઓને છોડી વ્યકિતગત આક્ષેપોવાળું જે લખાણ તમોએ પ્રગટ કર્યું છે તેજ પૂર્ણ સહાયક છે કેમકે ઉપરના કારણને આગળ મુકનાર મનુષ્યથી એવી પ્રવૃત્તિ કદીપણ બની શકતી નથી અને એવી પ્રવૃતિ કરવાવાળા મનુષ્યે હાજર ન થવામાં આ કલ્પેલું કારણ સત્ય બની શકતું નથી. ત્યાર પછી આત્મારામજી મહારાજના સમુદાયમાંથી અમુક અમુક મુખ્ય મુનિવરોની સભા થાય તો હું હાજર થઇ પુરાવા રજુ કરૂં એ પણ તમારૂં બહાનું છે કેમકે એક મહારાજાની પાસે ગયેલા દાવાનો જે ફેંસલો થાય તે પ્રથમની કચેરીયોમાં કરેલા ફેંસલાથી વિમુખતા નથી હોતી. માટે સંઘાડાના સરદારની પાસે ફેંસલા મુકતાં નીચલી કચેરીના આમંત્રણનું બહાનું કાઢવું તે પણ અસ્થાનેજ ગણાય એના પછી અમુક આચાર્યો એકત્ર થાય તો હું પુરાવા રજુ કરૂં. આ લખાણ પ્રથમના લખાણથી પણ તમારી વધારે બેસમજીને સિદ્ધ કરે છે; કેમકે એક રાજાની પ્રજામાં થયેલા ગુનાનો ન્યાય મેળવવામાં તમામ રાજાઓ એકત્ર કરવામાં આવે તે યુક્તિયુકત નથી. હાં ! તમારૂં બહાનું જબરૂં છે જેમ કોઇ હઠી આદમીએ કહ્યું કે મારી માતા હતીજ નહી. ત્યારે પાસમા ઉભેલા આદમીએ કહ્યું કે અરે બેવકુફ માતાવગર તારો જન્મજ કેવી રીતે સંભવી શકે પછી પેલો હઠી બોલ્યો કે મારી પાસે આ વિષયના ઘણાંજ પ્રમાણો છે. ત્યારે પાસે ઉભેલા આદમીએ કહ્યું કે જો તારી પાસે પ્રમાણ હોય તો રજુ કર હું માનવાને તૈયાર છું. આ વાત સાંભળી ધૂર્ત્તાનંદ દુરાગ્રહી કહેવા લાગ્યો કે જો તમો તમામ દેશના માણસોને તમારા ખરચે આમંત્રણ કરી તે લોકોની એક વિશાલ સભા ભરોતો તમને સિદ્ધ કરી બતાવુ. સમજવાવાળા સમજી ગયા કે એક માલ વગરની વાત માટે હજારો રૂપૈયા ખરચ કરવા કોણ તૈયાર થાય. આ ધૂર્ત્તાનંદનું બહાનું છે. જો કદી દેશના લોકોને બોલાવે તોપણ જેને બોલે બંધ નહી અને ઝટ એમ કહેવા મંડી જાય કે એમતો નહીં પણ બધા આદમીઓ માથુ જમીન સાથે લગાવી પગોને ઉંચા કરે તો પ્રમાણ રજુ કરૂં. પછી એનો ઉપાય શો ? એમ તંત્રીજી તમારૂં પણ આ

બહાનું ખોટું છે. કઠીન શિક્ષાથી સુધારાઓ અનેક જનોને થયા છે અને મોટા મોટા રાજા મહારાજાઓએ એ વિષયમાં ભાગ લીધો છે અગર આ વિષય લખવામાં આવે તો એક મોટો નિબંધ બને તેમ છે એવી મને મહારાજશ્રી તરફથી સૂચના મળી છે. સંઘપટ્ટકના કર્તાનું દૃષ્ટાંત અહિં (બેચરદાસની સાથે) લાગુ પડી શકતું નથી. અમદાવાદ અને સર્વ સ્થળો શાંતિના માર્ગે વર્ત્યા છે એ તમારૂ લખવું ઠીક છે. તે લોકો બેચરદાસને સંઘ બહાર મુકવાના કાર્યમાં કૃતાર્થ થવાથી શાંતિ પકડવામાં ભાગ્યશાળી બન્યા છે. તેવીજ રીતે અમારી યુક્તિઓ તમારા સમજવામા આવી જાય તો અમો પણ કૃતાર્થ થઇ શાંતિ મેળવવામાં ભાગ્યશાળી બની શકીએ, જ્યાંસુધી અમો તમારા રોગનું ચિકિત્સન કરતાં કરતાં તે રોગની પુરી અસાધ્યતાનું ભાન નહીં કરી શકીયે ત્યાં સુધી આ ઊપકારમાં કટીબદ્ધ રહીશું; બાદ અશક્ય પરિહાર સમજીને હાથ છોડી દઈશું.

ફુટનોટ-ગોકલભાઇ દુલભદાસને સુરત મોકલવા પડયા હતા, તેમાં પણ તેજ ઉપર લખેલ કારસ્થાનીની માયાજાળનું પરિણામ હતું તે વાતનો શ્રીજી મહારાજને પુરો અનુભવ છે; માટે તેથી તમારી વાત કાંઇ મુદ્દાસર છે; એમ માની શકાય નહિ

લી. શ્રીમદ્ આત્મારામજી જૈન પાઠશાલાના સેક્રેટરી શા. જેઠાલાલ ખુશાલચંદ. ડભોઈ.

ENGLISH SECTION